

६.४५२
११६०

6.2 v

प्राप्ति-संख्या.....

ई.

न (शोध) संस्थान

र

णसी-५

कुंज

18/4/22

IX - A

Jain

99540

कृपया इस ग्रन्थको निम्नांकित तिथि पर या उसके पूर्व
लौटा दें। विलम्बसे लौटानेपर ५ पैसे
प्रतिदिन दण्ड देना होगा।



११६०

कविता-कुंज

हि० ४६५२

A Selection From Eminent Hindi Poets:

FOR

HIGH SCHOOL CLASSES.

Revised Edition.

संकलनकर्त्ता

पं० रामकृष्ण शुक्ल, एम० ए०, 'शिलीमुख'

प्रोफेसर, महाराजा कालेज, जयपुर ।

व

बा० रामचन्द्र वर्मा,

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी ।

NAND KISHORE & BROS.,

BENARES.

संशोधित संस्करण]

1933.

[मूल्य १]

प्रकाशक—

नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स

बनारस ।

मुद्रक—

द. ल. निघोजकर,
श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस,
काशी ।

निवेदन

यद्यपि हमारे यहाँ प्राचीन काल में “साहित्य” शब्द से केवल काव्य-ग्रन्थों के समूह का ही बोध होता था, परन्तु आजकल उसका व्यवहार बहुत अधिक व्यापक अर्थ में होता है और वह किसी भाषा के समस्त ग्रन्थ-समुदाय का सूचक हो गया है। परन्तु काव्य का महत्त्व फिर भी पूर्ववत् अक्षुण्ण ही है। पहले काव्य ही किसी साहित्य का सर्वस्व समझा जाता था और इसी-लिये वह “साहित्य” कहलाता भी था। अब साहित्य शब्द का अर्थ बहुत व्यापक हो जाने पर भी किसी भाषा के समस्त ग्रन्थ-समूह में काव्य का स्थान सबसे ऊँचा माना जाता है। आजकल भी किसी साहित्य की शिक्षा तब तक अधूरी ही समझी जाती है, जब तक उसके प्रधान अङ्ग काव्य की अच्छी शिक्षा प्राप्त न कर ली जाय। इसी लिये साहित्य-शिक्षा में काव्य की शिक्षा अनिवार्य होती है। साहित्य की शिक्षा में काव्य की शिक्षा का समावेश आवश्यक रूप से किया जाता है। परन्तु किसी भाषा के काव्य का अच्छा ज्ञान प्राप्त करने के लिये बहुत अधिक समय की आवश्यकता होती है; अतः विद्यार्थियों को काव्य का स्थूल दिग्दर्शन कराने, काव्य के स्वरूप का साधारण परिचय कराने और उनके मन में काव्य के प्रति रुचि उत्पन्न करने की एक नई प्रथा चल पड़ी है। अच्छे अच्छे कवियों की चुनी हुई और अच्छी कविताओं का संग्रह उनके पाठ्य-क्रम में रख दिया जाता है जिससे उक्त सब उद्देश्यों की अनायास सिद्धि हो जाती है।

यह “कविता-कुञ्ज” भी इसी प्रकार का एक संग्रह है। इसमें व्रज-भाषा और अवधी दोनों के प्राचीन श्रेष्ठ कवियों तथा

(२)

खड़ी बोली के आधुनिक अच्छे अच्छे कवियों की चुनी हुई कविताएँ संगृहीत हैं। यह तो कहा ही नहीं जा सकता कि जितने कवियों की कविताओं का इसमें संग्रह है, केवल वही अच्छे कवि हैं; और न यही कहा जा सकता है कि जो उदाहरण इसमें संगृहीत हैं, केवल वही सर्वश्रेष्ठ हैं; क्योंकि ऐसा कहना धृष्टता की सीमा का उल्लंघन करके मूर्खता की सीमा में पैर रखना होगा; परन्तु फिर भी बिना किसी प्रकार की आपत्ति के इतना अवश्य कहा जा सकता है कि हिन्दी के प्राचीन और आधुनिक अधिकांश मान्य कवियों की अच्छी अच्छी रचनाएँ इस छोटीसी पुस्तक में एकत्र कर दी गई हैं; और वह इसलिए कि विद्यार्थी उनका अध्ययन करके प्राचीन तथा आधुनिक हिन्दी काव्य की प्रकृति और स्वरूप से परिचित हो जायँ। हमें विश्वास है कि यह उद्देश्य इस पुस्तक से भलीभाँति सिद्ध हो सकता है। यह संग्रह विशेषतः हाई स्कूल के विद्यार्थियों के लाभार्थ प्रस्तुत किया गया है और इसी लिये किसी कवि की कोई चुनी हुई कविता देने के पहले संक्षेप में उस कवि का परिचय दे कर पुस्तक के अन्त में उन सब कविताओं में आये हुए कठिन शब्दों के अर्थ भी दे दिये गये हैं जिसमें विद्यार्थी उन सब कविताओं को सहज में समझ सकें। ग्रंथ की उपयोगिता बढ़ाने के लिए आरंभ में हिंदी साहित्य का अत्यंत संचिप्त इतिहास और अंत में रस अलंकार और पिंगल पर भी संचिप्त विवेचन दे दिया गया है। रस अलंकार और पिंगल के उदाहरण जहाँतक हो सका है ग्रंथ ही में से दिये गये हैं। आशा है, यह संग्रह विद्यार्थियों के काव्य-ज्ञान की वृद्धि में बहुत कुछ सहायक होगा और जिस उद्देश्य से यह प्रस्तुत हुआ है, उसकी यथेष्ट सिद्धि होगी।

—संकलनकर्त्ता।

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१. गोस्वामी तुलसीदास	१
२. मलिक मुहम्मद जायसी	११
३. महात्मा सूरदास	१८
४. महात्मा कबीरदास	२५
५. आचार्य केशवदास	३२
६. कविवर बिहारीलाल	३७
७. अब्दुल रहीम खानखानाँ	४४
८. भूषण	५२
९. दीनदयाल गिरि	६१
१०. भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र	६७
११. पं० बदरीनारायण चौधरी	७३
१२. पं० प्रताप नारायण मिश्र	७६
१३. पं० श्रीधर पाठक	८५
१४. बा० जगन्नाथदास "रत्नाकर" बी० ए०	९१
१५. पं० अयोध्या सिंहजी उपाध्याय "हरिऔध"	१०१
१६. बाबू मैथिलीशरण गुप्त	१०६
१७. बा० जयशंकर प्रसाद	११८

(२)

विषय	पृष्ठ
१८. पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ...	१२७
१९. पं० सुमित्रानन्दन पन्त ...	१३१
२०. ठाकुर गोपाल शरण सिंह ...	१३६
२१. बं० रामनरेश त्रिपाठी ...	१४६
२२. पं० रामचरित उपाध्याय ...	१५१
२३. बा० नरोत्तमदास ...	१६६
२४. परिशिष्ट ...	क से य
२५. टिप्पणियाँ ...	१-३०

हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

हमारी सबसे प्राचीन भाषा संस्कृत थी। संस्कृत से प्राकृत, प्राकृत से अपभ्रंश और अपभ्रंश से हिंदी उत्पन्न हुई।

हिंदी भाषा के अन्तर्गत कई उपभाषाएँ आती हैं। हिंदी का अधिकांश पुराना साहित्य ब्रज भाषा में है। यह आगरे और ब्रजमंडल की भाषा है। किसी दिन समस्त उत्तर भारत में यही काव्य की भाषा मानी जाती थी। सूरदास का सूरसागर और तुलसीदासजी की बहुत सी कविताएँ इसी भाषा में लिखी गई हैं।

परन्तु तुलसीदासजी ने जिस भाषा में रामचरित-मानस को रचा वह अवधी कहलाती है और अयोध्या के आसपास बोली जाती है। मलिक मुहम्मद जायसी की पदमावत भी इसी भाषा में है।

राजस्थान की भाषा राजस्थानी में भी हिंदी का पुराना साहित्य मिलता है। इस भाषा के काव्यों में अधिकतर वीरों की कीर्ति गाई गई है। मीराबाई ने इस वीर रस की भाषा में कोमल भक्तिरस का सिंचन किया है।

पंजाबी में गुरु नानक आदि सिख गुरुओं ने अपनी भक्ति-पूर्ण रचनाएँ कीं। बुंदेलखंडी का कुछ-कुछ रूप केशवदास की कविता में दिखाई देता है। पहाड़ी भाषाओं में स्थायी साहित्य की सृष्टि नहीं हुई।

[आ]

परन्तु आजकल हिन्दी कहने से साधारणतया जिस भाषा का बोध होता है, वह खड़ी बोली है। यह राजस्थान पंजाब, दिल्ली, युक्तप्रान्त विहार, आधे मध्यप्रदेश और हैदराबाद दक्खिन तक में शिष्ट समाज में व्यवहार में आती है। मूल रूप में यह दिल्ली और मेरठ के आसपास की बोली है जिसको दिल्ली में मुसलमानी सल्तनत कायम हो जाने पर मुसलमानों ने अपना लिया था। जैसे-जैसे मुसलमान भारतवर्ष में फैलते गये वैसे-वैसे इस भाषा को भी फैलाते गये। इसीसे आज हिन्दी राष्ट्र-भाषा का स्थान प्राप्त कर सकी है। उर्दू खड़ी बोली ही का एक नाम है। आज जो उर्दू और खड़ी बोली में भेद दिखाई देता है, वह इस कारण कि उर्दू में अरबी फारसी के शब्दों की भरमार हो गयी है। हिंदी का सबसे पुराना कवि अमीर खुसरो था। वह बलबन और अलाउद्दीन का दरबारी था और बिल्कुल शुद्ध हिंदी लिखता था। विक्रम की १७ वीं सदी में रहीम ने और १८ वीं में शीतल ने खड़ी बोली में बड़ी सरस रचना की। उन्नीसवीं सदी में इंशा अल्ला खाँ और सदासुखलाल ने हिंदी गद्य-साहित्य का श्रीगणेश किया। अँगरेजी राज्य की जड़ जमने के साथ-साथ खड़ी बोड़ी की भी जड़ जमने लगी। लल्लूजी लाल और सदल मिश्र ने अँगरेजों की ही प्रेरणा से खड़ी बोली में क्रमशः प्रेमसागर और नासिकेतोपाख्यान लिखे। राजा शिवप्रसाद उन दिनों स्कूलों के इन्स्पेक्टर थे। उन्होंने हिंदी में पाठ्य पुस्तकें लिख कर उसका प्रचार किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिंदी को एक नये मार्ग पर लगा दिया जिसपर वह आज भी आगे बढ़ती चली जा रही है। हिंदी में स्थायी साहित्य की सृष्टि यहीं से होने लगी।

[३]

नागरी-प्रचारिणी सभा और उसका पुत्र हिंदी सम्मेलन उसकी अग्रगति में वेग भर रही हैं। परंतु अभी भी खड़ी बोली ने कविता के क्षेत्र में प्रवेश न किया था। कविता के लिए वह रूखी और असमर्थ समझी जाती थी। परंतु श्रीधर पाठक, महावीर प्रसाद द्विवेदी और अयोध्या सिंह उपाध्याय आदि कवियों ने खड़ी बोली में अत्यंत मधुर और रसवती कविता कर दिखलाई। मैथिलीशरण गुप्त के कविता-क्षेत्र में आने पर खड़ी बोली की कविता का अत्यंत प्रसार हो गया और तरुण कवि सुमित्रानंदन पंत की कोमल वाणी ने खड़ी बोली की रुखाई को अपने अंतस्तल की अभिनव स्निग्धता के प्रभाव से सदा के लिए निर्वासित कर दिया है।

अब विषय तथा साहित्य की विशिष्टता की दृष्टि से भी हिंदी साहित्य के विकास पर एक सरसरी दृष्टि डालनी चाहिए। अपभ्रंश से लगभग १००० स० में हिंदी की उत्पत्ति मानी जाती है। बा० श्यामसुंदरदास और पं० रामचंद्र शुक्ल ने तब से लेकर अबतक के हिंदी के इतिहास को चार भागों में बाँट दिया है—

- (१) आदिकाल (वीरगाथा काल) सं० १००० से १४००
- (२) पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) सं० १४०० से १७००
- (३) उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) सं० १७०० से १९००
- (४) आधुनिक काल (गद्यकाल) सं० १९०० से आगे

वीरगाथा काल में राजस्थानी में अधिकतर ग्रंथों की रचना हुई। जितने ग्रंथ इस काल के मिलते हैं वे प्रायः वीर रस से संबंध रखते हैं। चंद का पृथ्वीराज रासो और जगनिक का आल्हा इसी युग में बनाये गये थे।

[६]

पूर्व मध्यकाल हिन्दी साहित्य का स्वर्ण-युग माना जाता है। इस युग में भक्ति ने गहरा रंग पकड़ा। उस समय के कवियों ने ब्रजभाषा अथवा अवधी में भगवान की आराधना की। परन्तु सब की भक्ति एक ही प्रकार की न थी। किसी ने परमात्मा के निर्गुण निराकार रूप को लिया और किसी ने उसके सगुण साकार रूप को। इस प्रकार भक्ति की दो प्रधान शाखाएँ हो गयीं; निर्गुण शाखा और सगुण शाखा,—इनकी भी अलग २ प्रशाखाएँ हुई।

निर्गुण कवि दो प्रकार के हुए। एक तो वे जिन्होंने ज्ञानोपदेश में हाथ लगाया। इन लोगों में कबीर, दादू और नानक प्रधान हैं। ये ज्ञानाश्रयी कहलाते हैं। इनके अनुसार परमात्मा का कोई आकार अथवा मूर्ति नहीं। वह निर्विकार और निर्लेप है। इन्होंने मूर्तिपूजा, जातिपांति, छूआछूत, कर्मकांड और अंधविश्वासों का खण्डन किया।

निर्गुणियों की दूसरी शाखा ने प्रेम कहानियाँ लिखकर सांसारिक प्रेम के रूप में परमात्मा के प्रति प्रेम दिखलाया है। इस प्रेम मार्गी शाखा के कवि अधिकतर सूफी मुसलमान थे। मलिक मुहम्मद जायसी उनमें प्रधान था।

सगुण शाखा की भी दो धाराएँ हो गईं। एक ने राम की भक्ति को ग्रहण किया। तुलसीदास इस शाखा के सब से प्रधान कवि हैं और रामचरित मानस सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ। केशव-दास ने भी इसी समय अपनी रामचन्द्रिका लिखी।

सगुण धारा की दूसरी शाखा ने कृष्ण की उपासना को

[३]

स्वीकार किया। सूरदास, नंददास और मीराबाई इस शाखा के जगमगाते रत्नों में से हैं।

नरोत्तमदास, रहीम, रसखान, हितहरिवंश आदि भी पूर्व मध्यकाल के श्रेष्ठ कवियों में से हैं।

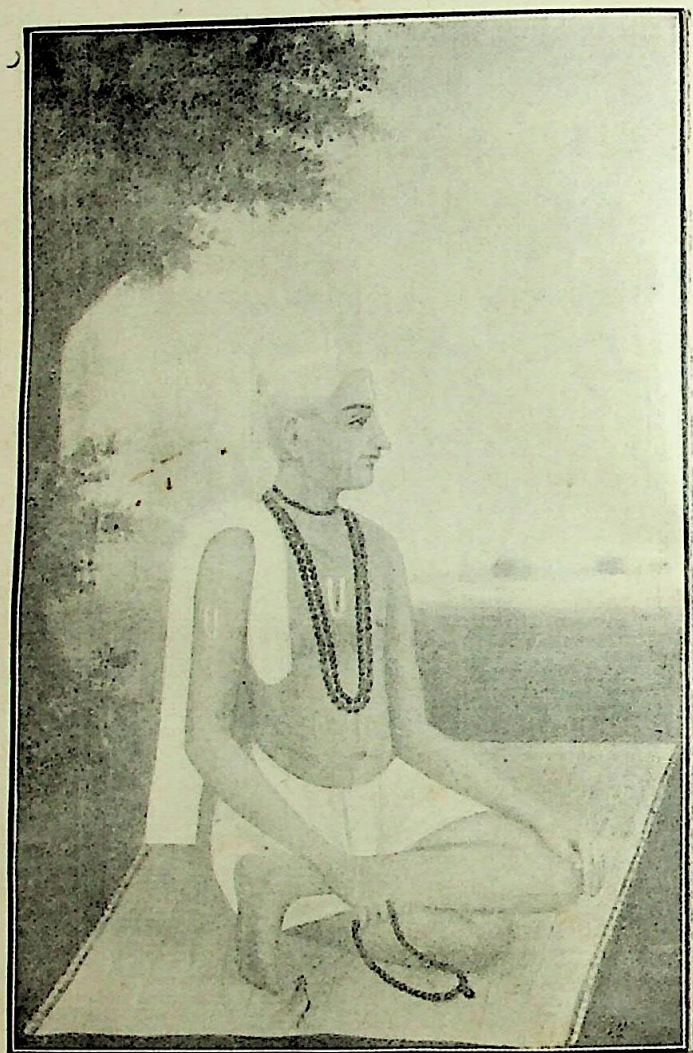
उत्तर मध्यकाल में लक्षण ग्रंथों की रचना हुई जिनमें रस, रीति, अलंकार, गुण, दोष आदि काव्य के भिन्न २ अंगों के लक्षण और उदाहरण ब्रजभाषा में लिखे जाते थे। कवियों की शृंगार रस की ओर अधिक प्रवृत्ति रही। सबसे पहले तथा मुख्य लक्षणकार केशवदास पूर्व मध्यकाल में हो चुके थे। प्रसिद्ध कवि विहारीदास की सतसई इस युग की सबसे महत्वपूर्ण रचना है। अन्य श्रेष्ठ शृंगारी कवियों में मतिराम, देव और पद्माकर मुख्य हैं। भूषण और उसके पीछे लाल और सूदन ने वीर रस की कविता रची।

आधुनिक काल में गद्य की प्रधानता है। नाना विषयों में ज्ञान-वृद्धि होने के कारण उनके संबंध में गद्य साहित्य की सृष्टि होने लगी। सदासुखराय, इंशाअल्ला खाँ, लखू लाल और सद्दल मिश्र ने क्रमशः सुख सागर (भागवत), रानी केतकी की कहानी, प्रेमसागर और नासिकेतोपाख्यान की रचना करके उत्तर मध्यम काल ही में गद्य की नींव डाल दी थी। राजा लक्ष्मण सिंह ने इस काल में कालिदास के शकुन्तला का सुन्दर अनुवाद किया। हरिश्चन्द्र जी ने नाटक, उपन्यास, इतिहास, अखबार निकालने शुरू किये। छापेखानों के खुल जाने के कारण साहित्य की सर्वांग वृद्धि बड़ी तेजी से होने लगी। इस युग के अधिकतर बड़े बड़े लेखक हिन्दी को अखबारी दुनिया

[५]

ने दिये । प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी; बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुन्द गुप्त, महावीर प्रसाद सब पत्रकार थे । व्याकरणानुकूल बनाकर भाषा को स्थिरता देना महावीर प्रसाद जी का काम है । श्यामसुन्दरदास जी ने नागरी-प्रचार के काम में हाथ डाला । आलोचना-शास्त्र, भाषा-शास्त्र आदि विषयों पर आरम्भिक ग्रन्थ लिखे और हिन्दी के बृहत् कोश शब्दसागर के प्रकाशन का उपक्रम किया जो अब पूरा छप चुका है । मिश्र बंधुओं ने हिन्दी के इतिहास का सूत्रपात किया जो श्यामसुन्दरदास और रामचन्द्र शुक्ल के हाथों विकसित हुआ । पद्मसिंह शर्मा ने तुलनात्मक समालोचना को जन्म दिया । रामचन्द्र शुक्ल ने नवीन समालोचना की और गंभीर निबंधों की नींव डाली । जयशंकर प्रसाद और गोविंद वल्लभ पंत ने सुन्दर नाटकों की रचना की । प्रेमचन्द और विश्वम्भरनाथ शर्मा ने उपन्यास और कहानियाँ लिखीं । वैज्ञानिक ग्रंथों की भी रचना होने लगी । गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने इतिहास की ओर ध्यान दिया ।

कविता ने भी सर्वतोमुखी उन्नति की । काव्य ने देश-प्रेम की अभिनव गंगा बहाई और स्वानुभूति को प्रधानता दी । खड़ी बोली ने ब्रजभाषा और अवधी का आसन छीन लिया । अयोध्यासिंह उपाध्याय का प्रियप्रवास और मैथिलीशरण गुप्त की भारत-भारती इस युग की प्रधान काव्य कृतियाँ हैं । स्वानुभूति वाले कवियों में सुमित्रानन्दन पंत, जयशंकरप्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी और महादेवी वर्मा प्रधान हैं ।



गोस्वामी तुलसीदास

१. गोस्वामी तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास जी हिन्दी के बहुत प्रसिद्ध महाकवि हैं। इनका जन्म सं० १५८३ अथवा १५८६ में बाँदा जिले के राजापुर नामक स्थान में एक सरयूपारी ब्राह्मण के यहाँ हुआ था। इनके पिता का नाम आत्माराम दूबे और माता का नाम हुलसी था। या तो इनके माता पिता का इनकी बाल्यावस्था में ही देहान्त हो गया था और या उन्होंने इनका त्याग कर दिया था, इससे इनका लालन-पालन काशी में बाबा नरहरिदास नामक एक महात्मा ने किया था। कहते हैं कि जब एक बार इनकी स्त्री अपने मैके चली गई और ये भी उसके पीछे पीछे वहाँ पहुँचे, तब उसने इन्हें कुछ व्यंग्य-वचन कहे, जिनका आशय यह था कि जितनी प्रीति तुम मुझसे करते हो, उतनी यदि परमात्मा के चरणों में करो, तो भव-बन्धन से मुक्त हो जाओ। तभी से ये विरक्त हो गए और साधु होकर तीर्थों में विचरण करने लगे। पर ये अधिकांश काशी में ही रहते थे। इनके रचे हुए रामचरित मानस या रामायण का हिन्दू मात्र में बहुत अधिक प्रचार है। इसके अतिरिक्त इन्होंने

(२)

विनय-पत्रिका, दोहावली, कवितावली, गीतावली, रामाज्ञा प्रश्न, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, रामलला नहल्लू, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपनी और कृष्ण गीतावली ये ११ ग्रन्थ और लिखे थे। ये ब्रज भाषा और अवधी दोनों में ही बहुत सुन्दर और पुष्ट रचनाएँ करते थे। ये स्मार्त्त वैष्णव, बहुत बड़े रामभक्त और परम सदाचारी थे और पाखंडियों के बड़े विरोधी थे। श्रावण शुक्ला ७ (अथवा कुछ लोगों के मत में श्रावण शुक्ला ३) सं० १६८० को काशी के अस्सी घाट पर इनका परलोकवास हुआ था।

(३)

राम-वन-गमन

दो०—सजि वन-साजु-समाजु सब बनिता-बंधु-समेत ।

वंदि विप्र-गुर-चरन प्रभु चले करि सबहि अचेत ॥१॥

निकलि बसिष्ठ द्वार भए टाढ़े । देखे लोग विरहदव दाढ़े ।

कहि प्रिय वचन सकल समुझाए । विप्रबृंद रघुशीर बोलाए ।

गुर सन कहि बरषासन दीन्हे । आदर दान विनय बस कीन्हे ।

जाचक दान मान संतोषे । भीत पुनीत प्रेम परितोषे ।

दासी दास बोलाइ बहोरी । गुरुहिं सौंपि बोले कर जोरी ।

सब कै सार संभार गोसाईं । करवि जनक जननी को नाई ।

बारहि बार जोरि जुग पानी । कहत रामु सब सन मृदु बानी ।

सोइ सब भाँति मोर हितकारी । जेहि तैं रहै भुआल सुखारी ।

दो०—मातु सकल मोरे बिरह जेहि न होहिं दुख-हीन ।

सोइ उपाउ तुम्ह करेहु सब पुरजन परमप्रवीन ॥२॥

एहिविधि राम सबहि समुझावा । गुरु-पद-पदुम-हरषि सिरनावा ।

गनपति गौरि गिरीसु मनार्ई । चले असोस पाइ रघुराई ।

रामु चलत अति भयउ विषादू । सुनि न जाइ पुर आरतनादू ।

कुसगुन लंक, अवध अति शोकू । हरष-विषाद-विवस सुरलोकू ।

गइ मुखछा तब भूपति जागे । बोलि सुमंत्र कहन अस लागे ।

रामु चले वन प्रान न जाहीं । केहि सुख लागि रहत तनमाहीं ।

एहि तैं कवन व्यथा बलवाना । जा दुखु पाइ तजिहितनु प्राना ।

पुनि धरि धीर कहै नरनाहू । लै रथ संग सखा तुम जाहू ।

(४)

दो०—सुठि सुकुमार कुमार दोउ जनक-सुता सुकुमारि ।

रथ चढ़ाइ देखराइ बनु फिरेहु गए दिनु चारि ॥३॥
 जौ नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई । सत्यसंध दृढ़व्रत रघुराई ।
 तौ तुम्ह बिनय करेहु करजोरो । फेरिअ प्रभु मिथिलेस-किसोरो ।
 जब सिय कानन देखि डेराई । कहेउ मोर सिख अवसर पाई ।
 सासु ससुर अस कहेउ सँदेसू । पुत्रि फिरिअ बन बहुत कलेसू ।
 पितृगृह कबहुँ, कबहुँ ससुरारी । रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी ।
 एहि विधि करेहु उपाय कदंबा । फिरइ त होइ प्रान-अवलंबा ।
 नहिं त मोर मरनु परिनामा । कछु न बसाइ भए विधि बामा ।
 अस कहि मुख छिपरा महि राऊ । राम लषनु सिय आनि देखाऊ ।
 दो०—पाइ रजायसु नाइ सिरु रथु अति वेग बनाइ ।

गएउ जहाँ बाहेर नगर सीयसहित दोउ भाइ ॥४॥
 तब सुमंत्र नृपवचन सुनाए । करि बिनती रथ रामु चढ़ाए ।
 चढ़ि रथ सीयसहित दोउ भाई । चले हृदय अवधहि सिरु नाई ।
 चलत रामु लखि अवध अनाथा । बिकल लोग सब लागे साथी ।
 कृपासिंधु बहुविधि समुभावहिं । फिरहिं प्रेमबस पुनि फिरि आवहिं ।
 लागति अवध भयावनि भारी । मानहुँ कालराति अँधियारी ।
 घोर जंतु सम पुर-नर-नारी । डरपहिं एकहिं एक निहारी ।
 घर मसान, परिजन, जनु भूता । सुत हित मीत मनहुँ जमदूता ।
 बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं । सरित सरोवर देखि न जाहीं ।
 दो०—हय गज कोटिन्ह केलिमृग पुरपसु चातक मोर ।

पिक रथांग सुक सारिका सारस हंस चकोर ॥५॥

(५)

रामबियोग बिकल सब ठाढ़े । जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े ।
 नगर सकल वन गहबर भारी । खग मृग विपुल सकल नरनारी ।
 विधि कैकेइ किरातिनि कीन्हों । जेहिं दव दुसह दसहुँ दिसि दीन्हों
 सहि न सके रघुवर-विरहागी । चले लोग सब व्याकुल भागी ।
 सर्वाहिं विचार कोन्ह मनमाहीं । राम लषन सिय बिनु सुखनाहीं ।
 जहाँ रामु तहँ सबुइ समाजू । बिनु रघुवोर अवध नहिं काजू ।
 चले साथ अस मंज दढ़ाई । सुरदुर्लभ सुखसदन बिहाई ।
 रामचरन-पंकज प्रिय जिन्हहीं । बिषयभोग बस कराह कि तिन्हहीं ।
 दो०—बालक वृद्ध बिहाइ गृह लगे लोग सब साथ ।

तमसा-तीर निवासु किय प्रथम दिवसु रघुनाथ ॥६॥
 रघुपति प्रजा प्रेमबस देखी । सद्य हृदय दुखु भएउ बिसेखी
 करुनामय रघुनाथ गोसाईं । बेगि पाइअहि पीर पराईं ।
 कहि सप्रेम मृदु बचन सुहाए । बहुविधि राम लोग समुभाए ।
 किए धरम-उपदेस घनेरे । लोग प्रेमबस फिरहिं न फेरे ।
 सील सनेह छाँड़ि नहिं जाई । असमंजस बस भे रघुराई ।
 लोग सोग-श्रम-बस गए सोई । कछुक देवमाया मति मोई ।
 जबहिं जामजुग जामिनि बीतो । रामु सचिव सन कहेउ सप्रीति ।
 खोज मारि रथ हाँकहु ताता । आन उपाय बनहिं नहिं बाता ।
 दो०—राम लषन सिय जानु चढ़ि संभुचरन सिरु नाइ ।

सचिव चलाएउ तुरत रथ इत उत खोज दुराई ॥७॥
 जागे सकल लोग भए भोरु । गे रघुनाथ भएउ अति सोरु ।
 रथ कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं । 'रामराम' कहि चहुँदिसि धावहिं

(६)

मनहुँ बारिनिधि बूड़ जहाजू । भण्ड बिकल बड़ बनिक समाजू
 एकहिँ एक देहिँ उपदेसू । तजे राम हम जानि कलेसू ।
 निंदहिँ आपु, सराहहिँ मीना । धिग जीवनु रघु-बीर-बिहीना ।
 जौं पै प्रिय बियोगु बिधि कोन्हा । तौ कस मरनु न माँगे दीन्हा ।
 एहि बिधि करत प्रलाप कलापा । आए अवध भरे परितापा ।
 विषमबियोगु न जाइ बखाना । अवधि आस सब राखहिँ जाना
 दो०—राम-दरस-हित नेम व्रत लगे करन नरनारि ।

मनहुँ कोक कोकी कमल दीन बिहोन तमारि ॥८॥

(रामचरित मानस)

पार्वती की तपस्या

गुननिधान हिमवान धरनिधर धुरधनि ।
 मैना तासु घरनि घर त्रिभुवन तियमनि ॥ १ ॥
 कहहु सुकृत केहि भाँति सराहिय तिन्ह कर ।
 लीन्ह जाइ जगजननि जनम जिन्ह के घर ॥ २ ॥
 मंगलखानि भवानि प्रगट जय तें भइ ।
 तब तें ऋधि सिधि संपति गिरिगृह नित नइ ॥ ३ ॥
 नित नव सकल कल्याण मंगल मोदमय मुनि मानहीं ।
 ब्रह्मादि सुर नर नाग अति अनुराग भाग बखानहीं ॥
 पितु, मातु प्रिय परिवार हरषहिँ निरखि पालहिँ लालहीं ।
 सित पाख बाढ़ति चंद्रिका जनु चंदभूषन भालहीं ॥४॥

(७)

कुँवरि सयानि बिलोकि मातु पितु सोचहिं ।
 गिरिजा जोग जुरिहि वर अनुदिन लोचहिं ॥ ५ ॥
 एक समय हिमवान भवन नारद गए ।
 गिरिवर मैना मुदित मुनिहिं पूजत भए ॥ ६ ॥
 उमहिं बोलि ऋषि-पगन मातु मेलति भइ ।
 मुनिमन कीन्ह प्रनाम, वचन आसिष देइ ॥ ७ ॥
 कुँवरि लागि पितु काँध ठाढ़ि भइ सोहइ ।
 रूप न जाइ बखानि, जान जोइ जोहइ ॥ ८ ॥
 अति सनेह सतभाय पाँय परि पुनि पुनि ।
 कह मैना मृदु वचन "सुनिय विनती, मुनि ! ॥ ९ ॥
 तुम तिभुवन तिहुँकाल विचार बिसारद ।
 पारवती-अनुरूप कहिय वर, नारद" ॥ १० ॥
 मुनि कह "चौदह भुवन फिरउँ जग जहँ जहँ ।
 गिरिवर सुनिय सरहना राउरि तहँ तहँ ॥ ११ ॥
 भूरि भाग तुम सरिस कतहुँ कोउ नाहिंन ।
 कछु न अगम, सब सुगम भयो विधि दाहिन ॥ १२ ॥
 दाहिन भए विधि, सुगम सब, सुनि तजहुँ चित चिंता नई ।
 वर प्रथम बिरवा बिरँचि बिरचो मंगला मंगलमई ॥
 विधिलोक चरचा चलति राउरि चतुर चतुरानन कही ।
 हिमवान कन्या जोग वर बाउर विबुध बंदित सही ॥ १३ ॥
 मोरैहु मन अस आव मिलहि वर बाउर" ।
 लखि नारद-नारदी उमहिं सुख भा उर ॥ १४ ॥

(८)

सुनि सहमे परि पाई, कहत भए दंपति ।

“गिरजहि लागि हमार जिवन सुख संपति ॥१५॥

नाथ ! कहिय सोइ जतन मिटइ जेहि दूषनु ।”

“दोषदलनु” मुनि कहेउ “बाल बिधुभूषनु ॥१६॥

अवसि होइ सिधि, साहस फलै सुसाधन ।

कोटि कल्पतरु सरिस संभु-अवराधन ॥१७॥

तुम्हरे आश्रम अवहि ईस तप साधहि ।

कहिय उमहि मनु लाइ जाइ अवराधहि” ॥१८॥

कहि उपाउ दंपतिहि मुदित मुनिवर गए ।

अति सनेह पितु मातु उमहि सिखवत भए ॥१९॥

सजि समाज गिरिराज दीन्ह सबु गिरिजहि ।

बदति जननि, “जगदीस जुवति जिनि सिरजहि ॥२०॥

जननी-जनक-उपदेस महेसहि सेवहि ।

अति आदर अनुराग भगति मन भेवहि ॥२१॥

भेवहि भगति मन, बचन करम अनन्य गति हरचरन की ।

गौरव सनेहु सँकोच सेवा जाइ केहि बिधि बरन की ॥

गुनरूप जोवनसीव सुंदरि निरखि छोभ न हर हिण ।

ते धीर अछत बिकार हेतु जो रहत मनसिज बस किए ॥२२॥

देव देखि भल समउ मनोज बुलायउ ।

कहेउ करिय सुरकाजु, साजु सजि धावउ ॥२३॥

बामदेव सन काम बाम होइ बरतेउ ।

जय-जय-मद निदरेसि हर, पाएसि फर तेउ ॥२४॥

५

(६)

रति पतिहीन मलोन विलोकि विसूरति ।
 नीलकंठ मृदु सील कृपामय मूरति ॥२५॥
 आसुतोष परितोष कोन्ह वर दोन्हेउ ।
 सिव उदास तजि वास अनत गम कीन्हेउ ॥२६॥
 उमा नेहबस बिकल देह सुधि बुधि गइ ।
 कलपवेलि बन बढ़त बिषम हिम जनु हइ ॥२७॥
 समाचार सब सखिन जाइ घर घर कहे ।
 सुनत मातु पितु परिजन दाखन दुख दहे ॥२८॥
 जाइ देखि अति प्रेम उमहिं उर लावहिं ।
 बिलपहिं बाम बिधातहि दोष लगावहिं ॥२९॥
 जो न होहिं मंगलमग सुर बिधि बाधक ।
 तौ अभिमत फल पावहिं करि समु साधक ॥३०॥
 साधक कलेस सुनाइ सब गौरिहि निहोरत धाम कों ।
 को सुनइ काहि सोहाइ घर, बित चहत चंद्रललाम कों ॥
 समुझाइ सबहिं दृढ़ाइ पन, पितु मातु आयसु पाइ कै ।
 लागी करन पुनि अगमु तपु, तुलसी कहै किमि गाइ कै ॥३१॥
 फिरेउ मातु पितु परिजन लखि गिरिजापन ।
 जेहि अनुराग लागु, बितु, सोइ हितु आपन ॥३२॥
 तजेउ भोग जिमि रोग, लोग अहिगन जनु ।
 मुनि-मनसहु ते अगम तपहि लायउ मनु ॥३३॥
 सकुचहिं बसन बिभूषन परसत जो वपु ।
 तेहि सरीर हर-हेतु अरंभेउ बड़ तपु ॥३४॥

(१०)

पूजहि सिवहि, समय तिहुँ करहि निमज्जन ।
 देखि प्रेमु ब्रतु नेमु सराहहि सज्जन ॥३५॥
 नींद न भूख पियास, सरिस निखि बासर ।
 नयन नीर, मुख नाम पुलक तनु, हिय हर ॥३६॥
 कंद मूल फल असन, कबहुँ जल पवनहिं ।
 सुखे बेल के पात खात दिन गवनहिं ॥३७॥
 नाम अपरना भयो परन जब परिहरे ।
 नवल धवल कल कीरति सकल भुवन भरे ॥३८॥
 देखि सराहहि गिरजहि मुनिबरु मुनि बहु ।
 अस तप सुना न दीख कबहुँ काहू कहूँ ॥३९॥
 काहू न देख्यो कहहि यह तपु जोगु फल फल चारि का ।
 नहिं जानि जाइन कहति चाहति काहि कुधर-कुमारिका ॥
 बटुवेष पेषन पेम पन ब्रत नेम ससिसेखर गए ।
 मनसहि समरपेउ आपु गिरजहि, बचन मृदु बोलत भए ॥४०॥

(पार्वत-मंगल)

(११)

२. मलिक मुहम्मद जायसी

ये सूफी सम्प्रदाय के पहुँचे हुए फकीर थे। इनके जन्म और मृत्यु का समय तथा स्थान आदि कुछ भी बात नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि ये गाजीपुर के एक दरिद्र कुल में उत्पन्न हुए थे। बाल्यावस्था में ही इन्हें शीतला निकली थी, जिससे इनकी आकृति बहुत कुरूप हो गई और बाईं आँख भी जाती रही। ये निजाम उद्दीन औलिया की शिष्य-परम्परा में थे और प्रसिद्ध नीतिज्ञ बादशाह शेर शाह के समय में हुए थे। इनका रचित “पद्मावत” नामक काव्य बहुत ही प्रसिद्ध है, जिसमें इनकी उच्च कोटि की सहृदयता का बहुत अच्छा परिचय मिलता है। सच्चे ईश्वर-भक्त में नम्रता, निष्पक्षता, मानव-प्रेम आदि जिन गुणों की आवश्यकता होती है, वे सब गुण इनमें पूर्ण मात्रा में वर्तमान थे। “पद्मावत” में सिंहलद्वीप के राजा गंधर्वसेन की कन्या पद्मावती और चित्तौर के राजा रतनसेन के प्रेम और विवाह की कथा है; और अन्त में अलाउद्दीन के चित्तौर पर चढ़ाई करने आदि की कुछ ऐतिहासिक तथा कुछ कल्पित बात हैं। सारी कहानी बहुत ही मनोरंजक रूप में और एक सिद्धहस्त लेखक तथा कवि की हैसियत में लिखी गई है। इनकी बनाई हुई “अखरावट” नाम की एक और छोटी पुस्तक है जिसमें वर्णमाला के एक एक अक्षर को लेकर कुछ सिद्धान्त सम्बन्धी बातें कही गई हैं। दोनों ही पुस्तकें अवधी भाषा में

(१२)

हैं। उन्हें देखने से ज्ञात होता है कि ये उस भाषा पर पूरा पूरा अधिकार रखते थे। अमेठी के राजा इन पर बहुत श्रद्धा रखते थे, इससे यह प्रायः जायस नामक स्थान में रहने लगे थे, और इसी लिये 'जायसी' कहलाए। अमेठी के राज-महल के सामने इनकी समाधि बनी है और सम्भवतः वहीं इनकी मृत्यु हुई थी।

(१३)

सात समुद्र खंड

सायर तरै हिये सत पूरा । जौ जिउ सत, कायर पुनिसूरा ॥
 तेइ सत बोहित कुरी चलाए । तेइ सत पवन पंख जनु लाए ॥
 सत साथी, सत कर संसारू । सत्त खेइ लेइ लावै पारू ॥
 सत्त ताक सब आगू पाछू । जहँतहँ मगर मच्छ औ काछू ॥
 उठै लहरि जनु ठाढ़ पहारा । चढ़े सरग औ परै पतारा ॥
 डोलहि बोहित लहरैं खाहीं । खिनतर होहिं, खिनहिं उपराहीं ॥
 राजै सो सत हिरदै बाँधा । जेहि सत टेकि करैं गिरि काँधा ॥

खार समुद्र सो नाँधा आए समुद जहँ खीर ।

मिले समुद वै सातौ बेहर बेहर नीर ॥ १ ॥

खीर समुद का बरनौं नीरू । सेत सरूप, पियत जस खीरू ॥
 उलथहिं मानिक, मोती, हीरा । दरब देखि मन होइ न थीरा ॥
 मनुआ चाह दरब औ भोगू । पंथ भुलाइ विनासैं जोगू ॥
 जोगी होइ ममहिं सो सँभारै । दरब हाथ कर समुद पवारै ॥
 दरब लेइ सोई जो राजा । जो जोगी तेहि के केहि काजा ॥
 पंथिहि पंथ दरब रिपु होई । ठग, बटपार, चोर सँग सोई ॥
 पंथी सो जो दरब सौं रूसे । दरब समेटि बहुत अस मूसे ॥

खीर-समुद सो नाँधा, आए समुद दधि माहँ ।

जो हैं नेह क बाउर तिन्ह कहँ धूप न छाँह ॥ २ ॥

दधि-समुद्र देखत तस दाधा । पेम क लुबुध दगध पै साधा ॥
 पेम जो दाधा धनि वह जीऊ । दधि जमाइ मथि काढ़ैं घीऊ ॥

(१४)

दधि एक बूँद जाम सब खीरु । काँजी बूँद बिनसि होइ नीरु ॥
 साँस डाँड़ि, मन मथनी गाढ़ी । हिये चोट बिनु फूट न साढ़ी ॥
 जेहि जिउ पेम चँदन तेहि आगी । पेम बिहून फिरैं डर भागी ॥
 पेम कै आगि जरै जाँ कोई । दुख तेहि करन अँबिरथा होई ॥
 जो जानै सत आपुहि जरै । निसत हिये सत करै न पारै ॥

दधि-समुद्र पुनि पार भे, पेमहि कहा सँभार ? ।

भावै पानी सिर परै, भावै परै अँगार ॥ ३ ॥

आप उदधि समुद्र अपारा । धरती सरग जरै तेहि झारा ॥
 आगि जो उपनी ओही समुंदा । लंका जरी ओहि एक बुंदा ॥
 बिरह जो उपना ओहि तें गाढ़ा । खिन न बुझाई जगत महुँ बाढ़ा ॥
 जहाँ सो बिरह आगि कह डोढी । सौँह जरै, फिरि देइ न पीढी ॥
 जग महुँ कठिन खड़ग कै धारा । तेहि तें अधिक बिरह कै झारा ॥
 अगम पंथ जो ऐस न होई । साध किए पावै सब कोई ॥
 तेहि समुद्र महुँ राजा परा । जरा चहै पै रोवै न जरा ॥
 तलफै तेल कराह जिमि इमि तलफै सब नीर ।

यह जो मलयगिरि प्रेम कर/बेधा समुद समीर ॥ ४ ॥

सुरा-समुद्र पुनि राजा आवा । महुआ मद-छाता देखरावा ॥
 जो तेहि पियै सो भाँवरि लेई । सीस फिरै, पथ पैगु न देई ॥
 पेम-सुरा जेहि के हिय माहाँ । कित बैठे महुआ कै छाहाँ ॥
 गुरु के पास दाख-रस रसा । बैरी बबुर मारि मन कसा ॥
 बिरह के दग्ध कीन्ह तन भाठी । हाड़ जराइ दीन्ह जस काठी ॥
 नैन-नीर सौँ पोता किया । तस मद चुवा बरा जस दिया ॥

(१५)

बिरह सरागन्हि भूँजै मासु । गिरि गिरि परै रक्त कै आँसु ॥
 मुहमद मद जो पेम कर गए दीप तेहि साथ ।

सीस न देइ पतंग होइ तौ लगि लहै न खाथ ॥ ५ ॥

पुनि किलकिला समुदमहँ आप । गा धोरज, देखत डर खाए ॥
 भा किलकिल अस उठै हिलोरा । जनु अकास दूटै चहुँ ओरा ॥
 उठै लहरि परबत कै नाई । फिरि आवै जोजन सौ ताई ॥
 धरती लेइ सरग लहि बाढ़ा । सकल समुद जानहुँ भा ठाढ़ा ॥
 नीर होइ तर ऊपर खोई । माथे रंभ समुद जस होई ॥
 फिरत समुद जोजन सौ ताका । जैसे भँवै कोहँर क चाका ॥
 भै परलै नियराना जबहीं । मरै जो जब परलै तेहि तबहीं ॥
 नै औसान सबन्ह कर देखि समुद कै बाढ़ि ।

नियर होत जनु लीलै रहा नयन अस काढ़ि ॥ ६ ॥

हीरामन राजा सौ बोला । एही समुद आप सत डोला ॥
 सिंघलदीप जौ नाहि निबाहू । एही ठाँव साँकर सब काहू ॥
 एहि किलकिला समुद्र गँभीरु । जेहि गुन होइ सो पावै तीरु ॥
 इहै समुद्र-पंथ मँभधारा । खाँड़े कै अस धार निनारा ॥
 तीस सहस्र कोस कै पाटा । अस साँकर चलिसकैन चाँटा ॥
 खाँड़े चाहि पैनि बहुताई । वार चाहि ताकर पतराई ॥
 एही ठाँव कहँ गुरु लँग लीजिय । गुरु सँग होई पार तौ कीजिय ॥
 मरन जियन एही पथहि एही आस निरास ।

परा सो गएउ पतारहि, तरा सो गा कैलास ॥ ७ ॥

राजै दीन्ह कटक कहँ बीरा । सुपुरुष होइ, करहु मन धीरा ॥

(१६)

ठाकुर जेहिक सूर भा कोई । कटक सूर पुनि आपुहि होई ॥
 जौ लहिसती न जिउ सत बाँधा । तौ लहि देइ कहाँ न काँधा ॥
 पेम समुद महुँ बाँधा बेरा । यह सब समुद बूँद जेहि केरा ॥
 ना हौं सरग क चाहौं राजू । ना मोहिं नरक सँति किलु काजू ॥
 चाहौं ओहि कर दरसन पावा । जेइ मोहिं आनि पेम-पथ लावा ॥
 काठहि काह गाढ़ का ढोला ? । बूढ़ न समुद, मगर नहिं लीला ॥

कान समुद धँसि लीन्हेसि भा पाछे सब कोइ ।

कोइ काहू न सँभारै आपनि आपनि होइ ॥८॥

कोइ बोहित जस पौन उड़ाहीं । कोई चमकि बीजु अस जाहीं ॥
 कोई जस भल धाव तुखारू । कोई जैस बैल गरियारू ॥
 कोइ जानहुँ हरुआ रथ हाँका । कोई गरुअ भार बहु थाका ॥
 कोई रेंगहिं जानहुँ चाँटी । कोई टूटि होहिं तर भाटी ॥
 कोई खाहिं पौन कर झोला । कोई करहिं पात अस डोला ॥
 कोई परहिं भौर जल माहाँ । फिरत रहहिं, कोइ देइ न बाहाँ ॥
 राजा कर भा अगमन खेवा । खेवा आगे सुआ परेवा ॥

कोइ दिन मिला सबेरे, कोइ आवा पछ-राति ।

जा कर जस जस साजु हुत सो उतरा तेहि भाँति ॥९॥

सतएँ समुद मानसर आए । मनजोकीन्हसाहस, सिधिपाए ॥
 देखि मानसर रूप सोहावा । हिय हुलास पुरइनि होइ छावा ॥
 गा अँधियार, रैनि-मसि छूटी । भा भिनसार किरिन-रवि फूटी ॥
 'अस्ति अस्ति' सब साथीबोले । अंध जो अहै नैन बिधि खोले ॥
 कवँल बिगस तस बिहँसी देहीं । भौर दसन होइ कै रस लेहीं ॥

(१७)

हँसहिं हंस औ करहिं किरीरा । चुनहिं रतन मुकुताहल हीरा ॥

जो अस आव साधि तप जोगू । पूजै आस, मान रस भोगू ॥

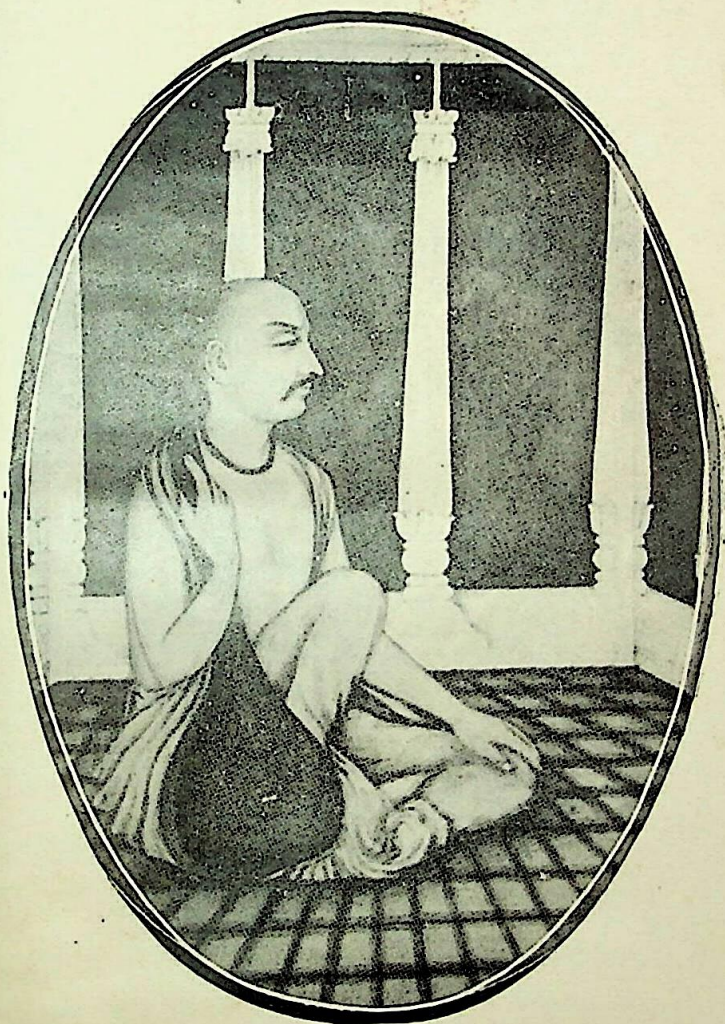
भाँर जो मनसा मानसर लीन्ह कैवलरस आइ ।

घुन जो हियाव न कै सका भूर काठ तस खाइ ॥१०॥

(पदमावत)

३. महात्मा सूरदास

महात्मा सूरदास जी हिन्दी के बहुत प्रसिद्ध महाकवि हैं और इनकी रचनाएँ बहुत अधिक हैं। विशेषतः इनका रचा हुआ सूर-सागर बहुत बड़ा ग्रन्थ है। उसमें के ५-६ हजार पद्य मिलते हैं। इनका जन्म स० १५४० के लगभग मथुरा के पास रुनकता नामक ग्राम में श्री रामदासजी नामक एक सारस्वत ब्राह्मण के घर में हुआ था। कुछ लोग इन्हें जन्मांध मानते हैं; पर यह बात ठीक नहीं जान पड़ती। ये बहुत धनहीन थे, अतः मथुरा के पास गौ घाट नामक स्थान में रह कर भजन बना कर गाया करते थे। वहाँ से श्रोवल्लीभाचार्य जी, इनके पदों से प्रसन्न होकर, इन्हें अपने साथ ब्रज ले गए थे। वहीं ये उनके शिष्य हो गए और मन्दिर में कीर्तन करने लगे। इन्हीं पदों और भजनों का संग्रह सूर-सागर में है। इनका रचा हुआ दूसरा ग्रन्थ साहित्य-लहरी है। ये संगीत शास्त्र के भी बहुत अच्छे ज्ञाता थे। इनकी कल्पना-शक्ति बहुत ही प्रबल थी और ये जिस विषय का वर्णन करते थे, उसका प्रत्यक्ष स्वरूप चित्रित कर देते थे। इनकी सब कविताएँ भक्ति-रस से ओत-प्रोत हैं। उनमें हास्य भी है, पर बहुत गम्भीर। इनके कूट पद भी बहुत प्रसिद्ध हैं। स० १६२० के लगभग पारासोली नामक ग्राम में इनका स्वर्गवास हुआ था।



सूरदास

(१६)

सूर-विनय

१—राग बिलावल

अब के माधव मोहिं उधारि ।

मगन हौं भवअंबुनिधि में कृपासिंधु मुरारि ॥
 नीर अति गंभीर भाया, लोभ लहरि तरंग ।
 लिये जात अगाध जल में गहे ग्राह अनंग ॥
 मीन इन्द्रिय अतिहि काटत मोट अब सिर भार ।
 पग न इत उत धरन पावत उरकि मोह सेवार ॥
 काम क्रोध समेत तृष्णा पवन अति भकभोर ।
 नाहिं चितवन देत तिय सुत नाम-नौका ओर ॥
 थकयो बीच बेहाल बिहवल सुनहु करना-मूल ।
 स्याम भुज गहि काढ़ि डारहु 'सूर' ब्रज के कूल ॥

२—राग सोरठ

अब को राखि लेहु भगवान ।

हम अनाथ बैठे दुम डरिया पारधि साँधे बान ॥
 याके डर भाज्यो चाहत हौं ऊपर दुक्यो सचान ।
 दुऊ भाँति दुख भयो आनि यह कौन उबारै प्रान ॥
 सुमिरत ही अहि डस्यो पारधी सर छूटे संधान ।
 'सूरदास' सर लग्यो सचानहिं जय जय कृपानिधान ॥

(२०)

३—राग धनाश्री

अब हों कहौ कौन दर जाउँ ।

तुम जु गुपाल चतुर चिंतामनि दीनबंधु सुनि नाउँ ॥
 माया कपट रूप कौरव दल लोभ मोह मद भारी ।
 परबस परी सुनहु करुनामय मम-मति पतिव्रतधारी ॥
 काम दुसासन गहे लाज पट मरन अधिक पति मेरी ।
 सुर नर मुनि कोउ निकट न आवत 'सूर' समुझि हरि चेरी ॥

४—राग धनाश्री

ऐसे प्रभु अनाथ के स्वामी ।

कहियत दीन दास पर-पीरक सब घट अन्तरजामी ॥
 करत बिबल्ल द्रुपद-तनया को 'सरन' सव्द कहि आयो ।
 पूर्ण अनंत कोटि परिवसननि अरि को गरब गँवायो ॥
 सुत-हित बिप्र, कीर-हित गनिका, परमारथ प्रभु पायो ।
 छन चितवन साप संकट तैं गज ग्राह ते छुटायो ॥
 तब तब पद न देखि अविगत को जन लगि वेष बनायो ।
 जो जन दुखी जानि भए ते रिपु हति हति सुख उपजायो ॥
 तुम्हरि कृपा जडुनाथ गुसाईं किहि न आसु सुख पायो ।
 'सूरजदास' अंध अपराधी सो काहे बिसरायो ॥

५—राग सारंग

कौन गति करिहौ मेरी नाथ ।

हों तो कुटिल कुचील कुदरसन रहत बिषय के साथ ॥
 दिन बीतत माया के लालच कुल कुटुंब के हेत ।

(२१)

सारी रैन नींद भरि सोवत जैसे पशू अचेत ॥
 कागज धरनि करै द्रुम लेखनि जल सायर मसि घोर ।
 लिखै गनेश जनम भरि ममकृत तऊ दोष नहि ओर ॥
 गज गनिका अरु बिप्र अजामिल अगनित अधम उधारे ।
 अपथै चलि अपराध करे मैं तिनहूँ ते अति भारे ॥
 लिखि लिखि मम अपराध जनम के चित्रगुप्त अकुलायो ।
 भृगु ऋषि आदि सुनत चक्रित भये यम सुनि सीस डुलायो ॥
 परम पुनीत पवित्र कृपानिधि पावन नाम कहायो ।
 सूर पतित जब सुन्यो बिरद यह तव धीरज मन आयो ॥

६--राग बिलावल

क्यों तू गोविंद नाम बिसाखो ।

अजहूँ चेति भजन करि हरि को काल फिरत सिर ऊपर भाख्यो ॥
 धन सुत दारा काम न आवै जिनहि लागि आपनपौ खोयो ।
 'सूरदास' भगवंत भजन बिनु चलयौ पछिताय नयन भरि रोयो ॥

७--राग सारंग

छाँड़ि मन हरि बिमुखन को संग ।

जाके संग कुबुद्धी उपजै परत भजन में भंग ॥
 कहा भयो पय पान कराये बिष नहिं तजत भुजंग ।
 काम क्रोध मद लोभ मोह मैं निसि दिन रहत उमंग ॥
 कागहिं कहा कपूर खवाए, स्वान न्हावाये गंग ।
 खर को कहा अरगजा लेपन मरकट भूषन अंग ॥

(२२)

पाहन पतित बान नहिं भेदत रीतो करत निषंग ।
 'सूरदास' खल कारी कामरि चढ़ै न दूजो रंग ॥

८—राग सारंग

जापर दीनानाथ ढरै ।

सोइ कुलीन बड़ो सुंदर सोइ निज पर कृपा करै ॥
 राजा कौन बड़ो रावन तें गर्बहि गर्व गरै ।
 राँकल कौन सुदामा हू ते आपु समान करै ॥
 रूपल कौन अधिक सीता तें जनम वियोग भरै ।
 अधिक कुरूप कौन कुबिजा तें हरि पति पाइ बरै ॥
 जोगी कौन बड़ो संकर तें ताको काम छरै ।
 कौन विरक्त अधिक नारद सों निसि दिन भ्रमत फिरै ॥
 अधम सु कौन अजामिल हू तें जम तहँ जात डरै ।
 'सूरदास' भगवंत भजन बिनु फिरि फिरि जठर जरै ॥

९—राग बिहाग

जो पै राम नाम धन धरतो ।

टरतौ नहीं जनम जन्मान्तर कहा राजजम करतो ।
 लेतो करि व्योहार सबनि सों मूल गाँठ में परतो ।
 भजन प्रताप सदाई घृत मधु, पावक परे न जरतो ॥
 सुमिरन गान वेद बिधि बैठो बिप्र-परोहन भरतो ।
 'सूर' चलत वैकुण्ठ पेलि कै बीच कौन जो अरतो ॥

१०—राग धनाश्री

दयानिधि तोरी गति लखि न परै ।

धरम अधरम, अधरम धरम करि अकरन करन करै ॥

(२३)

जय अरु बिजय पाप कह कीन्हो ब्राह्मन साप दिवायो ।
 असुर जोनि दीनो ता ऊपर धरम उल्लेह करायो ॥
 पिता वचन छुँडै सो पापी सो प्रहलादै कीन्हो ।
 तिनके हेत खंभ तैं प्रगटे नरहरि रूप जु लीन्हो ॥
 द्विजकुल-पतित अजामिल बिषयी गनिका प्रीति बढ़ाई ।
 सुत हित नाम नरायन लीन्हो तिहि तुव पदवी पाई ॥
 जग्य करत बैरोचन को सुत वेद बिहित विधि कर्म ।
 तिहि हठि बाँधि पतालहि दीन्हो कौन कृपानिधि धर्म ॥
 पतिवरता जालंधर जुवती प्रगटि सत्य तैं टारी ।
 अधम पुँसचली दुष्ट ग्राम की सुवा पढ़ावत तारी ॥
 दानो धर्म भानुसुत सुनियत तुम तैं विमुख कहावैं ।
 वेद बिरुद्ध सकल पांडवसुत सो तुम्हरे जिय भावैं ॥
 मुक्ति हेत जोगी बहु खम करै, असुर बिरोधे पावै ।
 अकथित कथित तुम्हारी महिमा 'सूरदास' कह गावै ॥

११—राग नट

प्रभु मोरे औगुन चित न धरो ।

समदरसी प्रभु नाम तिहारो अपने पनहि करो ॥
 इक लोहा पूजा में राखत इक घर बधिक परो ।
 एहि दुविधा पारस नहिं लीन्हों कंचन करत खरो ॥
 एक नदिया एक नार कहावत मैलो नीर भरो ।
 जब मिलिकै दोउ एक बरन भए सुरसरिनाम परो ॥

(२४)

एक जीव एक ब्रह्म कहावत 'सूरस्याम' भूगरो ।
अबकी बेर मोहिं पार उतारो नहिं पन जात टरो ॥

१२—राग धनाश्री

सबै दिन एकै से नहिं जात ।
सुमिरन भगति लेहु करि हरि की जौ लगि तन कुसलात ॥
कबहुँक कमला चपल पाय कै टेढ़ेइ टेढ़े जात ।
कबहुँक मग मग धूरि बटोरत भोजन कों बिलखात ॥
बालापन खेलत ही खोयो भगति करत अरसात ।
'सूरदास' स्वामी के सेवत पैहौ परमपद तात ॥

१३—राग केदारा

है हरिनाम को आधार ।
और यह कलिकाल नाहिन रह्यो निधि व्यौहार ॥
नारदादि सुकादि संकर कियो यहै बिचार ।
सकल श्रुति दधि मथत पायो इतनोई घृत सार ॥
दसहु दिसि गुन करम रोक्यो मीन को ज्यों जार ।
'सूर' हरि को भजन करतहिं मिटि गयो भव-भार ॥

१४—राग बिहाग

मो सम कौन कुटिल खल कामी ।
जिन तनु दियो ताहि बिसरायो ऐसो नोनहरामी ॥
भरि भरि उदर बिषय को धावों जैसे सूकर ग्रामी ।
हरिजन छाँड़ि हरीबिमुखन की निसि दिन करत गुलामी ॥
पापी कौन बड़ो है मो तैं सब पतितन में नामी ।
'सूर' पतित को ठौर कहाँ है, सुनिये श्रीपति स्वामी ॥



कबीर

(२५)

४. महात्मा कबीरदास

सुप्रसिद्ध कबीर पन्थ के प्रवर्तक महात्मा कबीरदास जो का जन्म संवत् १४५६ में किसी अज्ञात हिन्दू स्त्री के गर्भ से काशी में हुआ था और नोरू नामक एक मुसलमान जुलाहे ने इन्हें अपने यहाँ रखकर पाला पोसा था। ये बाल्यावस्था से ही बड़े धर्मपरायण थे और लोगों को उपदेश दिया करते थे। एक धर्मगुरु की आवश्यकता का अनुभव करके इन्होंने सुप्रसिद्ध स्वामी रामानन्द को अपना गुरु बनाया और आगे चलकर अपने नाम से एक नया पन्थ चलाया। हिन्दू और मुसलमान के धार्मिक झगड़े इन्हें बहुत नापसन्द थे और इनका मत था कि सब लोग मिलकर ईश्वर की उपासना कर सकते हैं। इन्होंने लोई नाम की एक स्त्री से विवाह किया था जिससे कमाल नाम का एक पुत्र और कमाली नाम की एक कन्या हुई थी। इनके सम्बन्ध में अनेक प्रकार की चमत्कारिक कथाएँ प्रसिद्ध हैं। इनकी उपदेशात्मक कविताओं और भजनों का संग्रह ग्रंथ रूप में इनके शिष्यों ने किया था जिनकी संख्या २० कही जाती है और जिनमें से रमैनी, साखी सबद और बीजक बहुत प्रसिद्ध हैं। पर कुछ लोगों का मत है कि इनके नाम से जो बहुत सी कविताएँ मिलती हैं, वे इनके शिष्यों की बनाई हुई हैं। इनकी भाषा प्रायः साधुओं की सी खिचड़ी भाषा है, पर अधिकांश खड़ी बोली का पुराना रूप है।

(२६)

कबीर की साखी

अछै पुरुष इक पेड़ है निरँजन बाकी डार ।
 तिरदेवा साखा भये पात भया संसार ॥ १ ॥
 देही माहिं बिदेह है, साहेब सुरति सरूप ।
 अनंत लोक में रमि रहा जाके रंग न रूप ॥ २ ॥
 चार भुजा के भजन में भूलि परै सब संत ।
 कबिरा सुमिरै तासु को जाके भुजा अनंत ॥ ३ ॥
 सोई मेरा एक तू और न दूजा कोइ ।
 जो साहेब दूजा कहै दूजा कुल का होइ ॥ ४ ॥
 साहेब सों सब होत है बंदे सों कछु नाहिं ।
 राई सों परबत करे परबत राई माहिं ॥ ५ ॥
 जो कुछ किया सो किया तुम में कछु कीया नाहिं ।
 कहो कहीं जौ मैं किया तुम ही थे मुझ माहिं ॥ ६ ॥
 जा कारन जग ढूँढ़िया सो तो घट ही माहिं ।
 परदा दीया भरम का ताते सूझै नाहिं ॥ ७ ॥
 ज्यों तिल माहीं तेल है ज्यों चकमक में आगि ।
 तेरा साईं तुझ में जागि सकै तो जागि ॥ ८ ॥
 जंत्र मंत्र सब झूठ है मत भरमो जग कोय ।
 सार शब्द जाने बिना कागा हंस न होय ॥ ९ ॥
 आदि नाम पारस अहै मन है मैला लोह ।
 परसत ही कंचन भया छूटा बंधन मोह ॥ १० ॥

(२७)

लाली मेरे लाल की जित देखा तित लाल ।
 लाली देखन मैं गई मैं भी है गई लाल ॥११॥
 आत्म अनुभव ज्ञान की जो कोई पूछे बात ।
 सो गूँगा गुड़ खाइ के कहै कौन मुख स्वाद ॥१२॥
 साधू ऐसा चाहिए जैसा सूप सुभाय ।
 सार सार को गहि रहै थोथा देइ उड़ाय ॥१३॥
 साधु कहावन कठिन है, लंबा पेड़ खजूर ।
 चढ़े तो चाखै प्रेम रस, गिरै तो चकनाचूर ॥१४॥
 बृच्छ कबहुँ नहिं फल भलै, नदी न संचै नीर ।
 परमारथ के कारने साधुन धरा सरीर ॥१५॥
 संत न छाँड़े संतई कोटिक मिलैं असंत ।
 मलय भुजंगहि बेधिया सीतलता न तजंत ॥१६॥
 चंदन की कुटकी भली नहिं बबूल लखराव ।
 साधन की भुमड़ी भली ना साकट को गाँव ॥१७॥
 जब लगि नाता जगत का तब लगि भगति न होय ।
 नाता तोड़े हरि भजै भगत कहावै सोय ॥१८॥
 कामी क्रोधी लालची इनते भगति न होय ।
 भगति करै कोई सूरमा जाति वरन कुल खोय ॥१९॥
 जब लगि भगति सकाम है तब लगि निस्फल सेव ।
 कह कबीर वह क्यों मिलै निस्कामी निज देव ॥२०॥
 यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं ।
 सीस उतारै भुइं धरै तब पैठे घर माहिं ॥२१॥

(२८)

लगे लगन छूटै नहीं जीभ चोंच जरि जाय ।
 मीठा कहा अँगार में जाहि चकोर चबाय ॥२२॥
 कबिरा प्याला प्रेम का अन्तर लिया लगाय ।
 रोम रोम में रमि रहा और अमल क्या खाय ॥२३॥
 नैनन की कर कोठरी, पुतली पलँग बिछाय ।
 पलकन की चिक डारि कै पिय को लिया रिझाय ॥२४॥
 अगिन आँच सहना सुगम, सुगम खड़ग की धार ।
 नेह निभाहन एक रस महा कठिन व्यौहार ॥२५॥
 दुख में सुमिरन सब करै सुख में करै न कोय ।
 जो सुख में सुमिरन करै दुख काहे को होय ॥२६॥
 माला फेरत जग मुआ, फिरा न मन का फेर ।
 कर का मनका डारि दे मन का मनका फेर ॥२७॥
 बिरह कमण्डल कर लिये बैरागी दो नैन ।
 माँगें दरस मधूकरी छके रहैं दिन रैन ॥२८॥
 बिरह बान जिन लागिया औषध लगत न ताहि ।
 सुसुक सुसुक मरि मरि जिये उठै कराहि कराहि ॥२९॥
 का मुख लै बिनती करौं लाज अवत है मोहिं ।
 तुम देखत औगुन करौं कैसे भावों तोहिं ॥३०॥
 अवगुन मेरे बाप जी बकस गरीब-नेवाज ।
 जौ मैं पूत कपूत हौं तऊ पिता को लाज ॥३१॥
 साहब तुम न बिसारियो लाख लोग लगि जाहिं ।
 हमसे तुमको बहुत हैं तुम से हमरे नाहिं ॥३२॥

(२६)

अमरित केरो पूरिया बहु विधि लीन्हे छोरि ।
 आप सरीखा जो मिलै ताहि पिआऊँ घोरि ॥३३॥
 ऐसा कोई ना मिला जासे रहिये लाग ।
 सब जग जलता देखिया अपनी अपनी आग ॥३४॥
 जिन ढूँढ़ा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठि ।
 मैं बपुरा बूढ़न डरा रहा किनारे बैठि ॥३५॥
 एक समाना सकल मैं सकल समाना ताहि ।
 कबिर समाना बूझ मैं तहाँ दूसरा नाहि ॥३६॥
 सत्त नाम कहुआ लगै मीठा लागै दाम ।
 दुविधा में दोऊ गए माया मिली न राम ॥३७॥
 कथनी मीठी खाँड़ सी करनी बिष की लोय ।
 कथनी तज करनी करै बिष सों अमृत होय ॥३८॥
 कथनी थोथी जगत में करनी उत्तम सार ।
 कह कबीर करनी सबल उतरै भव जल पार ॥३९॥
 तीर तुपक से जो लड़ै सो तो सूर न होय ।
 माया तजि भगती करै सूर कहावै सोय ॥४०॥
 पतिवरता पति को भजै पति पर धर बिस्वास ।
 आन दिशा चितवै नहीं सदा पीव की आस ॥४१॥
 गुरु गोबिन्द दोनों खड़े काके लागूँ पाँय ।
 बलिहारी गुरु आपने गोबिंद दियो बताय ॥४२॥
 यह तन बिष की बेलरी गुरु अमृत की खान ।
 सीस दिये जो गुरु मिलै तौ भी सस्ता जान ॥४३॥

(३०)

बहे बहाये जात थे लोक वेद के साथ ।
 पैड़ा मैं सत-गुरु मिले दीपक दीन्हा हाथ ॥४४॥
 ऐसा कोई ना मिला सत्त नाम का मीत ।
 तन मन सौंपे मिरग ज्यों सुने बधिक का गीत ॥४५॥
 सत-गुरु साँचा सूरमा नख सिख मारा पूर ।
 बाहर घाव न दीसई भीतर चकनाचूर ॥४६॥
 सुख के माथे सिल परै (जो) नाम हृदय से जाय ।
 बलिहारी वा दुःख की पल पल नाम रटाय ॥४७॥
 लेवै को सत नाम है देवै को अनदान ।
 तरवै को आधीनता बूड़न को अभिमान ॥४८॥
 कबिरा संगत साधु की हरै और की व्याधि ।
 संगत बुरी असाधु की आठो पहर उपाधि ॥४९॥
 कबिरा गरब न कीजिये काल गहे कर केस ।
 ना जानौ कित मारिहै क्या घर क्या परदेस ॥५०॥
 हाड़ जरै ज्यों लाकड़ी केस जरै ज्यों घास ।
 सब जग जरता देखि कर भये कवीर उदास ॥५१॥
 झूठे सुख को सुख कहै मानत है मन मोद ।
 जगत चवैना काल को कुछ मुख में कुछ गोद ॥५२॥
 पानी केरा बुदबुदा अस मानुष की जात ।
 देखत ही छिप जायगी ज्यों तारा परभात ॥५३॥
 रात गँवाई सोय कर दिवस गँवायो खाय ।
 हीरा जनम अमोल था कौड़ी बदले जाय ॥५४॥

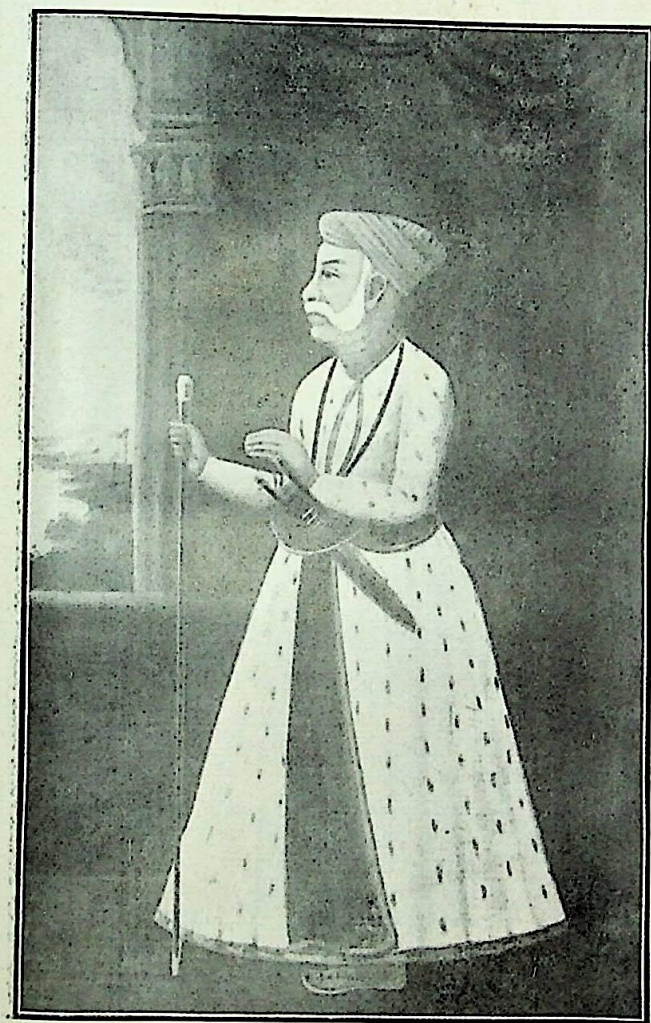
(३१)

आछे दिन पाछे गए गुरु से किया न हेत ।
 अब पछतावा क्या करै चिड़ियाँ चुन गईं खेत ॥५५॥
 काल करै सो आज कर आज करै सो अव्य ।
 पल में परलैं होयगी बहुरि करेगो कव्व ॥५६॥
 कबिरा नौबत आपनी दिन दस लेहु बजाय ।
 यह पुर पढ़न पुर गली बहुरि न देखौ आय ॥५७॥
 माली आवत देखि कै कलियाँ करें पुकार ।
 फूली फूली चुन लिष कालिह हमारी वार ॥५८॥
 दसों द्वार का पोंजरा तामें पंछी पौन ।
 रहिवे को आचरज है गण अचम्भा कौन ॥५९॥
 जो तो को काँटा बुवै ताहि वोइ तू फूल ।
 तोहि फूल के फूल हैं बाको है तिरसूल ॥६०॥

(३२)

५. आचार्य केशवदास

आचार्य केशवदास जी का जन्म पं० काशीनाथ जो नामक एक सनाढ्य ब्राह्मण के घर में सं० १५६४ में हुआ था। ये नख-शिखवाले बलभद्र कवि के छोटे भाई थे। ओड़छा-नरेश के ये दरबारी कवि, मन्त्र-गुरु, मन्त्री और मुसाहब थे। ये बहुत ऊँचे दर्जे के कवि और काव्यशास्त्र के आचार्य माने जाते हैं। इनके रचित ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं—रसिकप्रिया, रामचन्द्रिका, कविप्रिया, विज्ञान गीता और वीरसिंहदेव-चरित। ये अनेक प्रकार के छन्दों में कविता करने में बहुत सिद्धहस्त थे और इनकी कविता में काव्य के सभी अंग पूर्ण रूप में पाये जाते हैं। परन्तु कविता बहुत जटिल और गूढ़ होती है और साधारण लोगों के लिये उतनी अधिक आकर्षक नहीं होती। इनकी मृत्यु की निश्चित तिथि का पता नहीं चलता; परन्तु इतना कहा जा सकता है कि संवत् १६६७ से १६८० के बीच में इनका स्वर्ग-वास हुआ था।



केशव

(३३)

रामराज्य-वर्णन

भुजंगप्रयात छंद

अनन्ता सबै सर्वदा शस्ययुक्ता ।
समुद्रावधिः सप्त ईतो विमुक्ता ॥
सदा वृक्ष फूले फले तत्र सोहैं ।
जिन्हैं अल्पधी कल्प साखी विमोहैं ॥ १ ॥

सबै निम्नगा क्षीर के पूर पूरी ।
भई कामगो सी सबै धेनु रूरी ॥
सबै बाजि स्वर्वाजि तें तेज पूरे ।
सबै दन्ति स्वर्दन्ति तें दर्प रूरे ॥ २ ॥

सबै जीव हैं सर्वदानन्द पूरे ।
क्षमी संयमी विक्रमी साधु शूरे ॥
युवा सर्वदा सर्व विद्या विलासी ।
सदा सर्व सम्पत्ति शोभा प्रकाशी ॥ ३ ॥

चिरंजीव संयोग योगी अरोगी ।
सदा एकपत्नीव्रती भोग भोगी ॥
सबै शील सौंदर्य सौगन्ध धारी ।
सबै ब्रह्मज्ञानी गुणी धर्मचारी ॥ ४ ॥

सबै न्हान दानादि कर्माधिकारी ।
सबै चित्त चातुर्य चिताप्रहारी ॥

(३४)

सबै पुत्र पौत्रादि के सुक्ल साजें ।
 सबै भक्त माता पिता के बिराजें ॥ ५ ॥
 सबै सुन्दरी सुन्दरी साधु सोहैं ।
 शची सी सती सी जिन्हें देखि मोहैं ॥
 सबै प्रेम की पुण्य की सद्मिनी सी ।
 सबै चित्रिणी पुत्रिणी पद्मिनी सी ॥ ६ ॥
 भ्रमै संभ्रमी यत्र शोकै सशोकी ।
 अधर्मै अधर्मी अलोकै अलोकी ॥
 दुखै तौ दुखी ताप तापाधिकारी ।
 दरिद्रै दरिद्री बिकारै बिकारी ॥ ७ ॥

चौपाई

होम धूम मलिनाई जहाँ । अति चंचल चल दल है तहाँ ।
 बाल नाश है चूड़ाकर्म । तीक्ष्णता आयुध के धर्म ॥८॥
 लेत जनेऊ भिक्षा दानु । कुटिल चाल सरितानि बखानु ॥
 व्याकरणै द्विज वृत्तिन हरै । कोकिलकुल पुत्रन परिहरै ॥९॥
 फागुहि निलज लोग देखिये । जुवा देवारी को लेखिये ॥
 नित उठि बेभोई मारिये । खेलत में केहूँ हारिये ॥१०॥

दंडक

भावै जहाँ बिभिचारी वैद्य रमें पर-नारी,
 द्विजगन दंडधारी चीरी पर-पीर की ।
 मानिनीन हीं के मन मानियत मान भंग,
 सिंधुहि डलंघि जाति कीरति शरीर की ॥

(३५)

मूलै तौ अधोगतिन पावत हैं केशोदास,
मीचु ही सो है बियोग इच्छा गंगानीर की ।
बंध्या बासनानि जानु बिधवा सुबाटिकाई,
ऐसी रीति राजनीति राजै रघुवीर की ॥११॥

दोहा

कविकुल ही के श्रीफलन, उर अभिलाष समाज ।
तिथि ही को क्षय होत है, रामचंद्र के राज ॥१२॥

दंडक

लूटिबे के नाते पाप पट्टनै तौ लूटियतु
तोरिबे को मोहतरु तोरि डारियतु है ।
घालिबे के नाते गरब घालियतु देवन के
जारिबे के नाते अघ ओघ जारियतु है ॥
बाँधिबे के नाते ताल बाँधियतु केशोदास
मारिबे के नाते तौ दारद्र मारियतु है ।
राजा रामचन्द्र जू के नाम जग जीतियतु
हारिबे के नाते आन जन्म हारियतु है ॥१३॥

चंद्रकला छंद

सब के कल्पद्रुम के वन हैं सब के वर बारन गाजत हैं ।
सब के घर शोभति देवसभा सब के जय दुंदुभि बाजत हैं ॥
निधि सिद्धि विशेष अशेषनि सौ सब लोग सबै सुख साजत हैं ।
कहि केशव श्रीरघुराज के राज सबै सुरराज से राजत हैं ॥१४॥

(३६)

दंडक

जूझहि में कलह कलहप्रिय नारदै ,
 कुरूप है कुबेरे लोभ सब के चयन को ।
 पापन की हानि डर गुरुन को बैरी काम ,
 आगि सर्वभक्षी दुखदायक अयन को ।
 विद्या ही में बाहु बाहुनायक है वारिनीधि ,
 जारज है हनुमंत मीत उदयन को ।
 आँखिन अछत अंध नारि केर कृश कटि,
 ऐसो राज राजै राम राजिवनयन को ॥१५॥

दोहा

कुटिल कटाक्ष कठोर कुच, एकै दुःख अदेय ।
 द्विस्वभाव अश्लेष में, ब्राह्मण जाति अजेय ॥१६॥

तोमर छंद

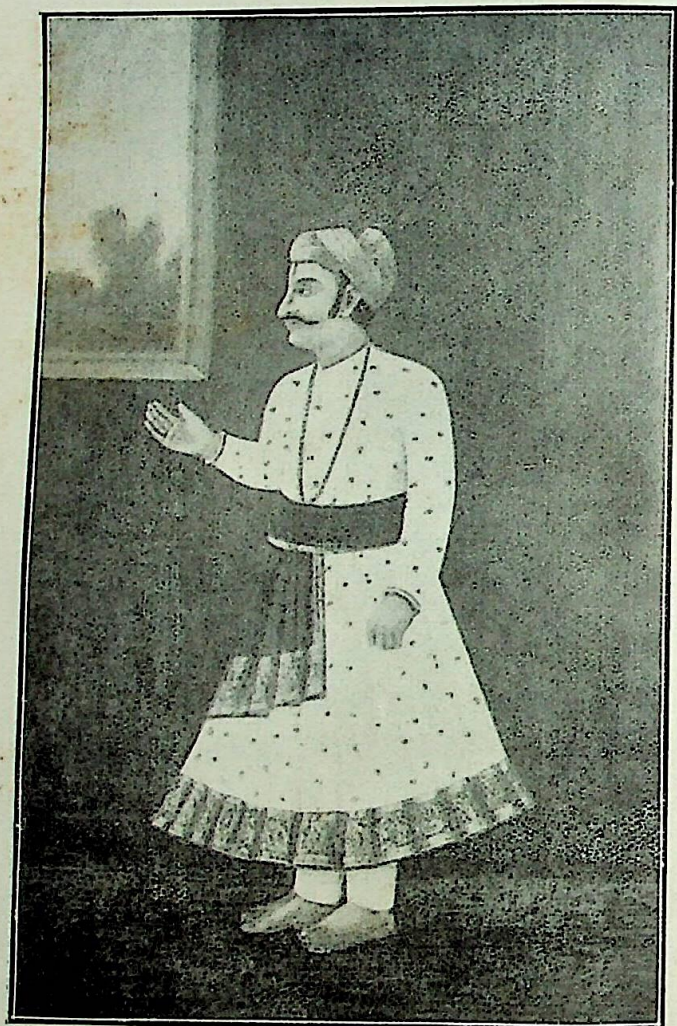
बहु शब्द वंचक जानि । अलि पश्यतोहर मानि ।
 नर छाँहई अपवित्र । शर खंग निर्दय मित्र ॥१७॥

सोरठा

गुण तजि औ गुणजाल, गहत नित्यप्रति चालनी ॥
 पुंश्चली ति तेहि काल, एकै कीरति जानिये ॥१८॥

दोहा

धनद लोक सुरलोकमय, सप्तलोक के साज ।
 सप्तद्वीपवति महि बसी, रामचंद्र के राज ॥१९॥
 दशसहस्र दशसै बरस, रसा बसी यहि साज ।
 स्वर्ग नर्क के मग थकै, रामचन्द्र के राज ॥२०॥
 (रामचन्द्रिका)



बिहारी

(३७)

६. कविवर बिहारीलाल

कविवर बिहारीलाल जी का जन्म सं० १८६० में ग्वालियर के पास बसुआ गोविन्दपुर नामक स्थान में चतुर्वेदी ब्राह्मण कुल में हुआ था। ये प्रायः जयपुर के महाराज जयसिंह के यहाँ रहा करते थे; और वहीं रह कर इन्होंने अपनी सुप्रसिद्ध "बिहारी सतसई" बनाई थी। कहते हैं कि इसके प्रत्येक दोहे पर इन्हें एक एक अशरफी पुरस्कार रूप में मिली थी। दोहे जैसे छोटे छंद में जितने अधिक और गूढ़ भाव भरने में इन्हें जैसी सफलता हुई, वैसी हिन्दी के किसी और कवि को नहीं हुई। इनकी उक्त सतसई की अब तक ३० से ऊपर टीकाएँ हो चुकी हैं। यही इनकी सतसई की सर्व-प्रियता का सबसे बड़ा प्रमाण है। शृंगार रस के ये बहुत ही उत्कट कवि माने जाते हैं। इनकी प्रत्येक रचना बहुत ही सरल, मनोहारिणी और सार-गर्भित है। अनुमान किया जाता है कि इनकी मृत्यु सं० १७२० में हुई थी।

(३८)

बिहारीलाल के दोहे

मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ ।
जा तन की भाँई परै, स्यामु हरित-दुति होइ ॥ १ ॥

नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहारि ।
तज्यौ मनो तारन-बिरदु, बारक बारनु तारि ॥ २ ॥

जम-करि-मुँह-तरहरि पखो, इहिं धरहरि चित लाउ ।
विषय-तृषा परिहरि अजाँ, नरहरि के गुन गाउ ॥ ३ ॥

जगतु जनायौ जिहिं सकलु, सो हरि जान्यौ नाहिं ।
ज्यौ आँखिनु सबु देखियै, आँखि न देखी जाहिं ॥ ४ ॥

दीरघ साँस न लेहि दुख, सुच साईहिं न भूलि ।
दई दई क्यों करतु है, दई दई सु कबूलि ॥ ५ ॥

बंधु भए का दीन के, को ताछौ, रघुराइ ।
तूठे तूठे फिरत हौ, झूठे बिरद कहाइ ॥ ६ ॥

कब कौ टेरतु दीन रट, होत न स्याम सहाइ ।
तुमहूँ लागी जगत-गुरु, जग-नाइक, जग-बाइ ॥ ७ ॥

दियौ, सु सीस चढ़ाइ लै, आछी भाँति अपरि ।
जापैं सुखु चाहतु लियौ, ताके दुखहिं न फेरि ॥ ८ ॥

कोऊ कोरिक संग्रहौ, कोऊ लाख हजार ।
मो संपति जदुपति सदा, बिपति-विदारनहार ॥ ९ ॥

मकराकृति गोपाल कै, सोहत कुंडल कान ।
धख्यौ मनौ हिय-धर समरु, झ्यौढ़ी लसत निसान ॥ १० ॥

(३६)

या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोइ ।
 ज्यों ज्यों बूढ़ै स्याम रँग, त्यों त्यों उज्जलु होइ ॥११॥
 जपमाला, छापै, तिलक, सरै न एको कामु ।
 मन-काँचै नाँचै वृथा, साँचै राँचै रामु ॥१२॥
 घर घर डोलत दीन है, जनु जनु जाचत जाइ ।
 दियें लोभ-चलमा चखनु, लघु पुनि बड़ौ लखाइ ॥१३॥
 मोहन-सूरति स्याम की, अति अद्भुत गति जोइ ।
 बसतु सु चित-अंतर, तऊ प्रतिबिंबितु जग होइ ॥१४॥
 बड़े न हूजै गुननु बिनु, बिरद-बड़ाई पाइ ।
 कहत धतूरे साँ कनकु, गहनौ गढ्यौ न जाइ ॥१५॥
 तजि तीरथ, हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुरागु ।
 जिहिं ब्रज-केलि-निकुंज-भग, पग पग होतु प्रयागु ॥१६॥
 कीजै चित सोई, तरे जिहिं पतितनु के साथ ।
 मेरे गुन-औगुन-गननु, गनौ न गोपीनाथ ॥१७॥
 हरि, कीजति बिनती यहै, तुम साँ बार हजार ।
 जिहिं तिहिं भाँति डर्यौ रह्यौ, पर्यौ रहौं दरबार ॥१८॥
 गिरि तैं ऊँचे रसिक-मन, बूढ़े जहाँ हजार ।
 वहै सदा पसु नरनु कौं, प्रेम-पयोधि पगारु ॥१९॥
 जिन दिन देखे वै कुसुम, गई सु बीति बहार ।
 अब, अलि, रही गुलाब में, अपत कँटीली डार ॥२०॥
 मैं तपाइ त्रयताप साँ राख्यौ हियौ हमामु ।
 मति कबहुँक आपे इहाँ पुलकि पसीजै स्यामु ॥२१॥

(४०)

स्वारथु, सुकृतु न, श्रमु वृथा, देखि बिहंग, बिचारि ।
 बाज परापँ पानि परि तूँ, पच्छीनु न मारि ॥२२॥
 सीस-मुकुट, कटि-काछनी, कर-मुरली उर-माल ।
 इहिं बानक मो मन सदा बसौ, बिहारीलाल ॥२३॥
 नए बिससियहि लखि नए, दुरजन दुसह-सुभाइ ।
 आँटें परि प्राननु हरत, काँटें लों लगि पाइ ॥२४॥
 नर की अरु नल-नीर को, गति एकै करि जोइ ।
 जेतौ नीचौ हैं चलै, तेतौ ऊँचौ होइ ॥२५॥
 बढ़त बढ़त संपति-सलिलु, मन-सरोजु बढ़ि जाइ ।
 घटत घटत सु न फिरि घटै, वरु समूल कुम्हिलाइ ॥२६॥
 कोटि जतन कोऊ करौ, परै न प्रकृतिहिं बीछु ।
 नल-बल जलु ऊँचें चढ़े, अंत नीच कौ नीचु ॥२७॥
 गुनो गुनी सबकैं कहैं, निगुनी गुनी न होतु ।
 सुन्यौ कहूँ तरु अरक तैं, अरक-समानु उदोतु ॥२८॥
 दुसह दुराज प्रजानु कौं, क्यों न बढ़े दुख-दंडु ।
 अधिक अँधेरौ जग करत, मिलि मावस रवि चंडु ॥२९॥
 भजन कह्यो, तातैं भज्यौ, भज्यौ न एकौ बार ।
 दूरि भजन जातैं कह्यो, सो तैं भज्यौ, गँवार ॥३०॥
 बसे बुराई जासु तन, ताही कौ सनमानु ।
 भलौ भलौ कहि छोड़ियै, खोटें ग्रह जपु, दानु ॥३१॥
 यह बरिया नहिं और को, तूँ करिया वह सोधि ।
 पाहन-नाव चढ़ाई जिहिं, कीन्हें पार पयोधि ॥३२॥

(४१)

अति अगाध, अति औथरौ, नहीं, कूप सरु, बाइ ।
 सो ताकौ सागरु जहाँ, जाकी प्यास बुझाइ ॥३३॥
 मोर-मुकुट की चंद्रिकनु, यों राजत नंदनंद ।
 मनु ससिसेखर की अकस, किय सेखर सत चंद ॥३४॥
 अधर धरत ^{हो} सहि कै परत, ओठ-डीठि-पट-जोति ।
 हरित बाँस की बाँसुरी, इंद्रधनुष रंग होति ॥३५॥
 कहै यहै श्रुति सुम्रत्यौ, यहै सयाने लोग ।
 तीन दवावत निसकहीं, पातक, राजा, रोग ॥३६॥
 जो सिर धरि महिमा महीं, लहियति राजा राइ ।
 प्रगटत जड़ता अपनिपै, सु मुकुट पहिरत पाइ ॥३७॥
 को कहि सकै बड़ेनु साँ, लखें बड़ीयौ भूल ।
 दीने दई गुलाब की, इन डारनु वे फूल ॥३८॥
 समै समै सुंदर सबै, रूप कुरूप न कोइ ।
 मन की रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होइ ॥३९॥
 या भव-पारावार काँ, उलँघि पार को जाइ ।
 तिय - छवि-छायाग्राहिनी, ग्रहै बीचहीं आइ ॥४०॥
 दिन दस आदरु पाइकै, करि लै आपु बखानु ।
 जौ लगि काग ! सराधपखु, तौ लगि तौ सनमानु ॥४१॥
 मरतु प्यास पिंजरा-पर्यो, सुआ समै कै फेर ।
 आदरु दै दै बोलियतु, बाइसु बलि की वेर ॥४२॥
 इहाँ आस अटक्यौ रहतु, अलि गुलाब कै मूल ।
 हैहै फेरि वसंत ऋतु, इन डारिनु वे फूल ॥४३॥

(४२)

वे न इहाँ नागर, बढ़ी, जिन आदर तो आब ।
 फूल्यौ अनफूल्यौ भयौ, गवई-गाँव, गुलाब ॥४३॥
 चलयौ जाइ, ह्याँ को करै, हाथिनु के व्यापार ।
 नहिं जानतु, इहिं पुर बसैं, धोबी, ओड़, कुँभार ॥४४॥
 मूड़ चढ़ाएँऊ रहै पर्यौ, पीठि कच-भार ।
 रहै गरैं परि, राखिवौ, तऊ हियैं पर हार ॥४५॥
 इक भीजैं, चहलैं परैं, बूड़ैं, बहैं हजार ।
 किते न औगुन जग करै, बै-नै चढ़ती बार ॥४६॥
 जाकैं एकाएक हूँ, जग ब्यौसाइ न कोइ ।
 सो निदाघ फूलै फरै, आकु डहडहौ होइ ॥४७॥
 मीत न नीति गलीतु है, जौ धरियै धनु जोरि ।
 खापैं खरचैं जौ जुरै, तौ जोरियै करोरि ॥४८॥
 कहलाने एकत बसत, अहि मयूर, मृग बाघ ।
 जगतु तपोवन सौ कियौ, दीरघ-दाघ निदाघ ॥४९॥
 छकि रसाल सौरभ सने, मधुर माधुरी-गंध ।
 ठौर ठौर भौरत भूपत, भौर-भौर मधु-अंध ॥५०॥
 लटुवा लौं प्रभु-कर-गहैं, निगुनी गुन लपटाइ ।
 वहै गुनी-कर तैं छुटैं, निगुनीयै है जाइ ॥५१॥
 लोपे कोपे इन्द्र लौं, रोपै प्रलय अकाल ।
 गिरिधारी राखे सबै, गो, गोपी, गोपाल ॥५२॥
 चितु दै देखि चंकोर-त्याँ, तीजैं भजे न भूख ।
 चिनगी चुगै अँगार की, चुगै कि चंद-मयूख ॥५३॥

(४३)

अपनैं अपनैं मत लगे बादि मचावत सोर ।
 ज्यों त्यों सबकों सेइवो एकै नंदकिसोर ॥५५॥
 बुरौ बुराई जो तजै, तौ चित खरौ डरातु ।
 ज्यों निकलंकु मयंकु लखि गनैं लोग उतपातु ॥५६॥
 ओछे, बड़े न है सकैं, लगौ सतर है गैन ।
 दीरघ होहि न जैंक हूँ फारि निहारैं नैन ॥५७॥
 तौ, बलियै, भलियै बनी, नागर नंदकिसोर ।
 जौ तुम नोकैं कै लख्यौ मो करनी की ओर ॥५८॥
 तनमोहन लौं मौहु करि, तूँ घनस्यामु निहारि ।
 कुंजबिहारी लौं बिहरि, गिरधारी उर धारि ॥५९॥
 को न छल्यौ इहिं जाल परि, कत, कुरंग, अकुलात ।
 ज्यों ज्यों सुरझि भज्यौ चहत, त्यों त्यों उरभूत जात ॥६०॥
 (बिहारो-सतसई)

७. अब्दुलरहीम खानखानाँ

रहीम का पूरा नाम अब्दुलरहीम खानखानाँ था और ये सुप्रसिद्ध मुगल सम्राट् अकबर के अभिभावक और साम्राज्य के सर्वप्रधान प्रबन्धकर्त्ता बैरमखाँ खानखानाँ के पुत्र थे। इनका जन्म सं० १६१३ में हुआ था। जब ये बहुत छोटे थे, तभी इनके पिता की मृत्यु हो गई थी और इनके परिवार पर बड़ी भारी विपत्ति आई थी। पर अकबर ने इन पर कृपा कर के इनकी शिक्षा और पालन-पोषण आदि का बहुत अच्छा प्रबन्ध कर दिया जिससे ये बड़े अमीरी ठाठ से रहने लगे। सं० १६३३ में ये गुजरात के सूबेदार और बाद में शाहजादा सलीम (जहाँगीर) के शिक्षक बनाए गए थे। इसके उपरान्त ये समय समय पर साम्राज्य के अनेक बड़े बड़े पदों पर प्रतिष्ठित रहे और बराबर उन्नति करते गए। ये कई बड़ी बड़ी लड़ाइयों में सम्मिलित हुए थे और इन्होंने अनेक स्थानों पर विजय प्राप्त की थी। ये बहुत बड़े उदार, दानी, साहसी और गुणग्राहक थे; और कवियों, गुणियों तथा याचकों को बात की बात में लाखों रुपये दे डालते थे। एक बार इन्हें महा-बतखाँ ने कैद कर लिया था और इन पर बड़ी विपत्ति आई थी। पर पीछे जहाँगीर ने इन्हें मुक्त कर के फिर इन्हें बहुत बड़ा मन्सब और जागीर दी थी। सं० १६८६ वि० में ७२ वर्ष की अवस्था में इनका देहान्त हुआ था। ये फारसी और संस्कृत में भी अच्छी कविता करते थे। हिन्दी में इनकी रचनाएँ ये हैं—रहीम सतसई, बरवै नायिकाभेद, मदनाष्टक, रास-पंचाध्यायी और शृंगार-सोरठ।

(४५)

रहीम के दोहे

तै रहीम मन आपुनो, कीन्हो चारु चकोर ।
 निसि वासर लाग्यो रहै कृष्णचन्द्र की ओर ॥ १ ॥
 अच्युत-चरण-तरंगिणी, शिव-सिर मालति माल ।
 हरि न बनायो सुरसरो, कीजो इंदव भाल ॥ २ ॥
 सर सूखे पंछी उड़ै औरै सरन समाहिं ।
 दीन मीन बिन पच्छि के कहु रहीम कहँ जाहिं ॥ ३ ॥
 धूर धरत नित सीस पर कहु रहीम केहि काज ।
 जिहिं रज मुनि-पत्नी तरी सो दूँढत गजराज ॥ ४ ॥
 दीन सबनि को लखत है दीनहिं लखै न कोय ।
 जो रहोम दीनहि लखै दीनबन्धु सम होय ॥ ५ ॥
 राम न जाते हरिन संग सोथ न रावन साथ ।
 जौ रहीम भावी कतहुँ होति आपुने हाथ ॥ ६ ॥
 कहि रहीम कैसे बनै बेरि केरि को संग ।
 वै डोलत रस आपने उनके फाटत अंग ॥ ७ ॥
 जौ रहीम ओछो बढ़ै तौ तितही इतराइ ।
 प्यादे सौं फरजी भयो टेढ़ो टेढ़ो जाइ ॥ ८ ॥
 खीरा को मुख काटि कै मलियतु नोन लगाय ।
 रहिमन कडुप मुखन की चाहियत यही सजाय ॥ ९ ॥
 नैन सलोने अधर मधु कहि रहीम घटि कौन ।
 मीठो भावै नौन पर अरु मीठे पर नौन ॥ १० ॥

(४६)

जो बिषया संतनि तजी मूढ़ ताहि लिपटात ।
 जो नर डारत बमन करि स्वान स्वाद सों खात ॥११॥
 जो रहीम दोपक दशा तिय राखति पट ओट ।
 समय परे ते होत है वाही पट की चोट ॥१२॥
 रहिमन राज सराहिये ससि सम सुखद जो होय ।
 कहा बापुरो भानु है तप्यो तरैयन खोय ॥१३॥
 कमला थिर न रहीम कहियह जानत सब कोय ।
 पुरुष पुरातन की बधू क्यों न चंचला होय ॥१४॥
 कहि रहीम या पेट सों, क्यों न भयो तू पीठ ।
 रीते अनरीते करत भरे बिगारत दीठि ॥१५॥
 जो गरीब सों हित करें धनि रहीम वै लोग ।
 कहा सुदामा बापुरो कृष्ण मितार्ई जोग ॥१६॥
 कह रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसंग ।
 चंदन बिष ब्यापत नहीं लिपटे रहत भुजंग ॥१७॥
 आप न काहू काम के डार पात फल फूल ।
 औरन को रोकत फिरैं रहिमन पेड़ बबूल ॥१८॥
 रहिमन सूधी चाल सों प्यादो होत वजीर ।
 फरज़ी मीर न है सकै टेढ़े की तासीर ॥१९॥
 बड़े पेट के भरन में है रहीम दुख बाढ़ि ।
 गज के मुख बिधि याहिते दण्ड दन्त दुइ काढ़ि ॥२०॥
 यों रहीम सुख होत है बढ़त देखि निज गोत ।
 ज्यों बड़री अखियाँ निरखि अँखियन को सुख होत ॥२१॥

(४७)

ओछे काम बड़े करें तौ न बड़ाई होइ ।
 ज्यों रहीम हनुमन्त को गिरधर कहै न कोइ ॥२२॥
 जौ बड़ेन को लघु कहो नहिं रहीम घटि जाहिं ।
 गिरधर मुरलीधर कहे कछु दुख मानत नाहिं ॥२३॥
 ससि सँकोच साहस सलिल मान सनेह रहीम ।
 बढ़त बढ़त बढ़ि जात हैं घटत घटत घटि सोम ॥२४॥
 यह रहीम निज संग लैं जनमत जगत न कोई ।
 वैर जीति अभ्यास जस होत होत ही होइ ॥२५॥
 बड़े दीन को दुख सुने लेत दया उर आनि ।
 हरि हाथी सों कब हुतो कहु रहीम पहिचानि ॥२६॥
 रहिमन राम न उर धरे, रहत विषय लिपटाय ।
 पशु खर खात सबाद सों, गुर गुलियाए खाय ॥२७॥
 दुरदिन परे रहीम कहि दुर-थल जैयत भागि ।
 ठाढ़े हूजत घूर पर जब घर लागति आगि ॥२८॥
 प्रीतम छवि नयननि बसी पर छवि कहाँ समाय ।
 भरी सराय रहीम लखि और पथिक फिरि जाय ॥२९॥
 गुरुता फवै रहीम कहि फवि आई है जाहि ।
 उर पर कुच नीको लगै अनत बतौरी आहि ॥३०॥
 कौन बड़ाई जलधि मिलि गंग नाम भा धीम ।
 केहि की प्रभुता नहिं घटी पर घर गये रहीम ॥३१॥
 मानसरोवर ही मिले हंसनि मुकता भोग ।
 सफरिन भरे रहीम सर बकुलनि के ही जोग ॥३२॥

(४८)

रहिमन नहीं सराहिये लेन देन की प्रीति ।
 प्राणनि बाजी लग रही हारि होइ कै जीति ॥३३॥
 रहिमन सिर सहि तजत नहिं बड़े प्रीति की पौरि ।
 मूकनि मारति आँवही नींद बिचारी दौरि ॥३४॥
 जो पुरुषारथ ते कहूँ, सम्पति मिलति रहीम ।
 पेट लागि बैराट घर तपत रसोई भीम ॥३५॥
 सब कोऊ सबसों करै राम जुझार सलाम ।
 हित रहीम तब जानिए जा दिन अटके काम ॥३६॥
 ज्यों रहीम गति दीप की कुल कपूत गति सोइ ।
 बारे उजियारो करै बड़े अँधेरो होइ ॥३७॥
 छोटिन सो सोहैं बड़े कहि रहिमन इहि लेख ।
 सहसनि हय को बाँधिये लै दमरी की मेख ॥३८॥
 सम्पति भरम गँवाइ के, हाथ रहत कछु नाहिं ।
 ज्यों रहीम ससि रहत है दिवस अकासहि माहिं ॥३९॥
 अनुचित उचित रहीम लघु करहिं बड़नि के जोर ।
 ज्यों ससि के संजोग तें पचवत अगिन चकोर ॥४०॥
 काम कछू आवै नहीं मोल न कोऊ लेइ ।
 बाजू टूटे बाज को साहब चारा देइ ॥४१॥
 धनि रहीम जल पंक को, लघु जिय पियत अघाइ ।
 उदधि बड़ाई कौन है जगत पियासो जाइ ॥४२॥
 माँगै घटत रहीम पद कितौ करौ बड़ काम ।
 तीनि पैड़ बसुधा करी तऊ बामनै नाम ॥४३॥

(४६)

नाद रीझि तन देत मृग, नर धन हेत समेत ।
 ते रहीम पशु ते अधिक, रीझेहूँ नहिं देत ॥४४॥
 रहिमन कबहूँ वड़नि के, नहीं गरव को लेस ।
 भार धरत संसार को, तरु कहावत सेस ॥४५॥
 रहिमन नीचनि संग बलि, लगत कलंक न काहि ।
 दूध कलारनि हाथ लखि, मद समझे नर ताहि ॥४६॥
 रहिमन अब वे तरु कहाँ जिनकी छाँह गँभीर ।
 अब बागनि बिच देखियतु, सेहुँड़ कंज करीर ॥४७॥
 बिगरी बात बनै नहीं, लाख करो किन कोइ ।
 रहिमन विगरे दूध को मथे न माखन होइ ॥४८॥
 मथत मथत माखन रहे दही मही बिलगाइ ।
 रहिमन सोई मीत है भीर परे ठहराइ ॥४९॥
 होइ न जाकी छाँह ढिग, फल रहीम अति दूरि ।
 बाढ़ो सो खिन काजही जैसे तार खजूरि ॥५०॥
 यों रहीम गति बड़न की, ज्यों तुरंग व्यौहार ।
 दाग दिवावत आपु तन, सही होत असवार ॥५१॥
 रहिमन निज मन की व्यथा, मनही राखो गोइ ।
 सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहै कोइ ॥५२॥
 रहिमन चुप ह्वे बैठिये, देखि दिनन के फेर ।
 जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहै देर ॥५३॥
 गहि शरणागत राम की, भवसागर को नाव ।
 रहिमन जगत उधार करि, और न कछू उपाव ॥५४॥

(५०)

रहिमन वे नर मर चुके, जे कहूँ माँगन जाहिं ।
 उनते पहिले वे मरे, जिन मुख निकसति नाहिं ॥५५॥
 जाल परे जल-जात बहि तजि मीननि को मोह ।
 रहिमन मछरी नीर को तरु न छाँड़ति छोह ॥५६॥
 धन दारा अरु सुतन में रहत लगाये चित्त ।
 क्यों रहीम खोजत नहीं गाढ़े दिन को मित्त ॥५७॥
 मुक्ता करे कपूर करि चातक जीवन जोइ ।
 पतो बड़ो रहीम जल व्याल बदन विष होइ ॥५८॥
 ससि की सीतल चाँदनी सुन्दर सबहि सुहाय ।
 लगे चोर चित में लटी घटि रहीम मन आय ॥५९॥
 अमृत ऐसे वचन में रहिमन रिस की गाँस ।
 जैसे मिसिरहु में मिली निरस बाँस की फाँस ॥६०॥
 रहिमन मनहि लगाइ कै देखि लेहु किन कोई ।
 नर को बस करिवो कहा नारायण बस होइ ॥६१॥
 रहिमन अँसुवन नयन ढरि जिय दुख प्रगट करेइ ।
 जाहि निकारो गेह तें कस न भेद कहि देइ ॥६२॥
 गुनते लेत रहीम जन सलिल कूप तें काढ़ि ।
 कूपहु ते कहूँ होत है मन काहू को बाढ़ि ॥६३॥
 रहिमन लाख भली करो अगुनी अगुन न जाइ ।
 राग सुनत पय पियत हूँ साँप सहज धरि खाइ ॥६४॥
 जैसी परे सो सहि रहै कहि रहोम यह देह ।
 धरती ही पर परत सब सीत घाम अरु मेह ॥६५॥

(५१)

सीत हरत तम हरत नितभुवन भरत नहीं चूक ।
 रहिमन तिहि रवि को कहा जो घटि लखै उलूक ॥६६॥
 नहीं रहीम कछु रूप गुण नहीं मृगया अनुराग ।
 देसी स्वान जु राखिये भ्रमत भूखहीं लाग ॥६७॥
 कागज कैसो पूतरा सहजहि में घुलि जाय ।
 रहिमन यह अचरज लखो सोऊ खैंचत बाय ॥६८॥
 रहिमन कहि इक दीप तैं प्रगटु सबै दुति होइ ।
 तनु सनेह कैसे दुरे दृग दीपक जर दोइ ॥६९॥
 तरुवर फल नहीं खात है सरवर पियहि न पानि ।
 कहि रहीम परकाज हित संपति सँचहिं सुजान ॥७०॥

(५२)

भूषण

महाकवि भूषण का जन्म संवत् १६७० में कानपुर जिले के तिकवाँपुर नामक गाँव में कश्यप गोत्री कान्यकुब्ज ब्राह्मण रत्नाकर त्रिपाठी के घर में हुआ था। कहा जाता है कि कवि मतिराम इनके छोटे भाई थे। हिन्दी के वीर रस के कवियों में भूषण का स्थान बहुत ऊँचा है और ये बड़े ही प्रतिभाशाली कवि थे। इनमें हिन्दुत्व, जातीयता और राष्ट्रीयता आदि की भावनाएँ बहुत प्रबल थीं। कहा जाता है कि ये अपनी भावज के ताना देने पर घर से खाली हाथ निकल पड़े थे और चित्रकूट के राजकुमार रुद्रराम के पास गए थे। उन्होंने इन्हें कवि भूषण की उपाधि दी थी। वहाँ से ये औरंगजेब के दरबार में दिल्ली गए और कुछ दिनों के उपरान्त वहाँ से दक्षिण में शिवा जी के पास चले गए। शिवा जी से इन्हें लाखों रुपए और जागीर आदि पुरस्कार में मिली थी। पीछे ये महाराज छत्र-साल बुँदेला के यहाँ भी गए थे और उन्होंने भी इनका बहुत अधिक आदर-सम्मान किया था। इनके लिखे हुए ग्रन्थों में शिवराज-भूषण और शिवा बावनी ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हैं। भूषण हजारों और भूषण उल्लास आदि और भी दो तीन ग्रन्थ इनके रचे हुए बतलाए जाते हैं, पर वे अभी तक मिले नहीं हैं। इनकी मृत्यु संवत् १७७२ में हुई थी।

(५३)

शिवाजी का प्रताप

कवित्त मनहरण

साजि चतुरंग वीर रंग मैं तुरंग चढ़ि,
 सरजा सिवाजी जँग जीतन चलतु हैं ।
 'भूषन' भनत नाद बिहद नगारन के,
 नदी नद मद गव्वरन के रलत हैं ।
 ऐल फैल खैल मैल खलक में गैल गैल,
 गजन की ठेल पेल् सैल उलसत हैं ॥
 तारा सौं तरनि धूरिधारा में लगत जिमि,
 थारा पर पारा पारावार यों हलत हैं ॥ १ ॥
 बाने फहराने घहराने घंटा गजन के,
 नाहीं ठहराने राव राने देस देस के ।
 नभ भहराने ग्राम नगर पराने सुनि,
 बाजत निसाने सिवराज जू नरेस के ।
 हाथिन के हौदा उकसाने, कुम्भ कुंजर के,
 भौन का भजाने, जलि छूटे लट केस के ।
 दल के दरारेहू ते कमठ करारे फूटे,
 केरा कैसे पात बिहराने फन सेस के ॥ २ ॥
 प्रेतिनी पिसाचरु निसाचर निसाचरि हूँ,
 मिलि मिलि आपुस मैं गावत बधाई हैं ।

(५४)

भैरो भूत प्रेत भूरि भूधर भयंकर से,
 जुत्थ जुत्थ जोगिनी जमाति जुर आई है ॥
 किलकि किलकि कै कुतूहल करति काली,
 डिमडिम डमरू दिगम्बर बजाई है ।
 सिवा पूँछें सिव सों "समाज आजु कहाँ चली,"
 "काहू पै सिवा नरेस भृकुटी चढ़ाई है" ॥ ३ ॥
 बाजि, गजराज, सिवराज, सन साजत ही,
 दिल्ली दलगीर दशा दीरघ दुखन की ।
 तनियाँ न तिलक, सुथनियाँ, पगनियाँ न,
 घामे घुमरात छोड़ि सेजियाँ सुखन की ॥
 'भूषन' भनत पति बाँह बहियाँ न तेऊ,
 छहियाँ छबीली ताकि रहियाँ रुखन की ।
 बालियाँ बिथुरि जिमि आलियाँ नलिन पर,
 लालियाँ मलिन मुगलानियाँ मुखन को ॥ ४ ॥
 ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहनवारी,
 ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती हैं ।
 कन्द मूल भोग करें कन्द मूल भोग करें,
 तीन बेर खातीं सो तौ तीन बेर खाती हैं ॥
 भूषन सिथिल अंग भूषन सिथिल अंग,
 बिजन डुलार्ती तेऽब बिजन डुलातो हैं ।
 'भूषन' भनत सिवराज बीर तेरे त्रास,
 नगन जड़ार्ती ते वै नगन जड़ाती हैं ॥ ५ ॥

(५५)

उतरि पलंग ते न दिया है धरा पै पग,
 तेऊ सग वग निसि दिन चली जातो हैं ।
 अति अकुलार्ती मुरभार्ती न छिपातीं गात,
 बात न सोहाती बोले अति अनखाती हैं ॥
 'भूषन' भनत सिंह साहि के सपूत सिवा,
 तेरी धाक सुने अरि नारि बिललाती हैं ।
 कोऊ करैं घातो कोऊ रोतीं पीटि छाती,
 घरैतीनि बेर खातीं ते वै बोनिये खाती हैं ॥ ६ ॥
 साहि सिरताज औ सिपाहिन में पातसाह,
 अचल सुसिन्धु के से जिनके सुभाव हैं ।
 'भूषन' भनत परी शस्त्रन सेवा धाक,
 काँपत रहत न गहत चित चाव हैं ॥
 अथह बिमल जल कालिंदी के तट केते,
 परे जुद्ध विपति के मारे उमराव हैं ।
 नाव भरि बेगम उतारैं बाँदी डोंगा भरि,
 साहि मक्का मिसि उतरत दरियाव हैं ॥ ७ ॥
 किवले के ठौर बाप बादसाह साहिजहाँ,
 ताको कैद कियो मानो मक्के आगि लाई है ।
 बड़ो भाई दारा वाको पकरि के कैद कियो,
 मेहरहु नाहिं वाको जायो सगो भाई है ॥
 बंधु तौ मुराद बकस वादि चूक करिवे को,
 बीच लै कुरान खुदा की कसम खाई है ॥

(५६)

‘भूषन’ सुकवि कहै सुनो नवरंगजेव,
एते काम कीन्हे फेरि पादसाही पाई है ॥ ८ ॥

कैयक हजार जहाँ गुर्ज-वरदार ठाढ़े,
करिके हुस्यार नीति पकरि समाज की ।

राजा जसवन्त को बुलाय कै निकट राख्यो,
तेऊ लखत नीरे जिन्हें लाज स्वामि-काज की ॥

‘भूषन’ तबहुँ ठठकत ही गुसुलखाने,
सिंह लौ भूपट गुनि साहि महाराज की ।

हटक हथ्यार फड़ बाँधि उमरावन की,
कीन्हों तब नौरँग ने भेंट सिवराज की ॥ ९ ॥

सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिवे के जोग,
ताहि खरो कियो जाय जारन के नियरे ।

जानि गैर मिसिल गुसीले गुसा धारि उर,
कीन्हों ना सलाम न बचन बोले सियरे ॥

‘भूषन’ भनत महावीर बलकन लाग्यो,
सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे ।

तमक ते लाल मुख सिवा को निरखि भयो,
स्याह मुख नौरँग सिपाह मुख पियरे ॥ १० ॥

देवल गिरावते फिरावते निसान अली,
ऐसे डूबे राव राने सबी गये लबकी ।

गौरा गनपति आप औरन को देत ताप,
आप के मकान सब मारि गये दबकी ॥

(५७)

पीरा पयगम्बरा दिगम्बरा दिखाई देत,
 सिद्ध की सिधवाई गई रही बात रब की ।
 कासिहु ते कला जाती मथुरा मसीद होती,
 सिवाजी न होतो तौ सुनति होति सबकी ॥११॥
 साँच को न मानै देवी देवता न जानै अरु,
 ऐसी उर आनै मैं कहत बात जब की ।
 और पातसाहन के हुतो चाह हिन्दुन की,
 अकबर साहजहाँ कहैं साखि तब की ॥
 बबबर के तब्वर हुमायूँ हद् बाँधि गये,
 दो मैं एक करी ना कुरान वेद ढव की ।
 कासिहु की कला जाती मथुरा मसीद होती,
 सिवाजी न होतो तौ सुनति होत सबकी ॥१२॥
 कुम्भकरन असुर औतारी औरंगजेब,
 कीन्हें कतल मथुरा दोहाई फेरो रब की ।
 खोदि डारे देवी देव सहर मुहल्ला बाँके,
 लाखन तुरुक कीन्हें छूटि गई तबकी ॥
 'भूषन' भनत भाग्यो कासीपति विश्वनाथ,
 और कौन गिनती मैं भूली गति भवकी ।
 चारों वर्ण धर्म छोड़ि कलमा नेवाज पढ़ि,
 सिवाजी न होतो तौ सुनति होत सबकी ॥१३॥
 दावा पातसाहन सों कीन्हों सिवराज बोर,
 जेर कीन्हों देस हद् बाँध्यौ दरबारे से ।

(५८)

हठी मरहठी तामैं राख्यो ना मवास कोऊ,
 छीने हथियार डोलैं बन बनजारे से ॥
 आमिष आहारी मांसहारी दै दै तारी नाचैं,
 खाँड़े तोड़, किरचैं उड़ाये, सब तारे से ।
 पोल सम डील जहाँ गिरि से गिरन लागे,
 मुंड मतवारे गिरैं भुँड मतवारे से ॥१४॥
 छूटत कमान और तीर गोली वानन के,
 मुसकिल होत मुरचान हू की ओट में ।
 ताही समै सिवराज हुकुम कै हल्ला कियो,
 दावा बाँधि पख्यौ हल्ला बीर भट जोट में ॥
 'भूषन' भनत तेरी हिम्मति कहाँ लौ कहाँ,
 किम्मति इहाँ लगि है जाकी भट भोट में ।
 ताव दै दै मूँछन कँगूरन पै पाँव दै दै,
 अरि मुख घाव दै दै कूद परैं कोट में ॥१५॥
 उतै पातसाहजू के गजन के ठट्ट छूटे,
 उमड़ि, घुमड़ि, मतवारे घन भारे हैं ।
 इतै सिवराज जू के छूटे सिंहराज औ,
 विदारे कुम्भ करनि के चिक्करत कारे हैं ॥
 फौजें सेख सैयद मुगल औ पठानन की,
 मिलि इखलास काहू मीर न सम्हारे हैं ।
 हद्द हिन्दुवान की बिहद्द तरवारि राखि,
 कैयो बार दिल्ली के गुमान भारि डारे हैं ॥१६॥

(५६)

जोरि करि जैहैं जुमिलाहू के नरेस पर,
 तोरि अरि खण्ड खण्ड सुभट समाज पै ।
 भूषन असाम, रुम, बलख, बुखारे जैहैं,
 चीन, सिलहट, तरि जलधि जहाज पै ॥
 सब उमरावन की हठ कूरताई देखौ,
 कहैं नवरंगजेव साहि सिरताज पै ।
 भोख माँगि खैहैं बिनु मनसब रहैं पै,
 न जैहैं हजरत महावली सिवराज पै ॥१७॥
 चन्द्राव चूर करि जावली जपत कीन्हों,
 मारे सब भूप औ सँहारे पुर धाय कै ।
 'भूषन' भनत तुरकान दल थम्भ काटि,
 अफजल मारि डारे तबल बजाय के ॥
 एदिल सों वेदिल हरम कहैं बार बार,
 अब कहा सुख सोवौ सिंहहि जगाय कै ।
 भेजना है भेजौ सो रिसालैं सिवराज जू की,
 बाजों करनालैं परनालैं पर आय कै ॥१८॥
 अफजल खान को जिन्होंने मयदान मारा,
 बीजापुर गोलकुंडा मारा जिन आज है ।
 'भूषन' भनत फरासीस त्यों फिरंगी मारि,
 हबसी तुरुक डारे उलटि जहाज है ॥
 देखत मैं रुसतम खाँ को जिन खाक किया,
 साल की सुरति आजु सुनोजो अवाज है ।

(६०)

चौंकि चौंकि चकता कहत चहूँघा ते,
 यारो लेत रहो खबरि कहाँ लौं सिवराज है ॥१६॥
 फिरँगाने फिकिरि औ हदसनि हबसाने,
 'भूषन' भनत कोउ सोचत न घरी है ।
 बीजापुर बिपति बिडरि सुनि भाज्यो सब,
 दिल्ली दरगाह बीच परी खरभरी है ॥
 राजन के राज सब साहिन के सिरताज,
 आज सिवराज पातसाही चित धरी है ।
 बलख बुखारे कसमीर लौं परी पुकार,
 धाम धाम धूमधाम रूम साम परी है ॥२०॥
 (शिवा-बावनी)

(६१)

दीनदयाल गिरि

ये काशी के रहनेवाले दशनामी संन्यासी थे। इनके जन्म-काल और वंश आदि का ठीक पता नहीं चलता। पर जान पड़ता है कि काशी के आस पास के किसी गाँव में किसी ब्राह्मण या क्षत्रिय कुल में इनका जन्म हुआ था और बाद में ये संन्यासी हो गए थे। ये बहुत ही उदार, सहृदय तथा आत्मा-भिमानी थे। कष्ट पड़ने पर भी कभी किसी से कुछ याचना नहीं करते थे। तत्कालीन काशी-नरेश तथा कुछ और धनवान् लोग गुप्त रूप से इनकी सहायता किया करते थे। ये बहुत ही उच्च कोटि के और परम मार्मिक कवि थे। इनकी भाषा और भाव दोनों ही बहुत उच्च कोटि के हैं। संस्कृत के भी ये बहुत अच्छे विद्वान् थे। इनका अन्योक्ति कल्पद्रुम नामक ग्रन्थ बहुत ही सुन्दर है। इसके अतिरिक्त अनुराग वाग, दृष्टान्त तरंगिणी, अन्योक्ति माला और वैराग्य-दिनेश नाम के इनके और ग्रन्थ भी हैं। कहा जाता है कि इनकी मृत्यु काशी में मणिकर्णिका घाट पर संवत् १६२२ में बहुत वृद्धावस्था में हुई थी।

(६२)

अन्योक्तियाँ

जिय तरु को परिमल परसि लियो सुजस सब ठाम ।
 तिन भंजन करि आपनो कियो प्रभंजन नाम ॥
 कियो प्रभंजन नाम बड़ो कृतघन बरजोरो ।
 जब जब लगी दवागि दिया तब भोंकि भकोरो ॥
 बरनै दीनदयाल सेउ अब खल थल मरु को ।
 लै सुख सीतल छाँह तास तोर्यो जिन तरु को ॥ १ ॥
 केतो सोम कला करो करो सुधा को दान ।
 नहीं चंद्रमनि जो द्रवै यह तेलिया पखान ॥
 यह तेलिया पखान बड़ो कठिनाई जाकी ।
 टूटी याके सीस बोस बहु बाँकी टाँकी ॥
 बरनै दीनदयाल चंद तुमही चित चेतो ।
 कूर न कोमल होहि कला जो कीजे केतो ॥ २ ॥
 बरखै कहा पयोद इत मानि मोद मन माँहि ।
 यह तो ऊसर भूमि है अंकुर जमिहै नाहि ॥
 अंकुर जमिहै नाहि बरष शत जो जल दैहै ।
 गरजै तरजै कहा बृथा तेरो श्रम जैहै ॥
 बरनै दीनदयाल न ठौर कुठौरहि परखै ।
 नाहक गाहक बिना बलाहक ह्याँ तू बरखै ॥ ३ ॥
 भौरा अंत बसंत के है गुलाब इहि रागि ।
 फिरि मिलाप अति कठिन है या बन लगै दवागि ॥

(६३)

या वन लगै दवागि नहीं यह फूल लहैगो ।
 ठौरहि ठौर भ्रमात बड़ो दुख तात सहैगो ॥
 वरनै दीनदयाल किते दिन फिरिहै दौरा ।
 पछितैहै कर दये गये ऋतु पीछे भौरा ॥ ४ ॥
 रंभा भूमत हो कहा थोरे हो दिन हेत ।
 तुमसे केते है गये अरु हैंहैं यहि खेत ॥
 अरु हैंहैं यहि खेत मूल लघु साखा हीने ।
 ताहू पै गज रहै दीठि तुम पै प्रति दीने ॥
 वरनै दीनदयाल हमें लखि होत अचंभा ।
 एक जन्म के लागि कहा भुकि भूमत रंभा ॥ ५ ॥
 नाहीं भूलि गुलाब तू गुनि मधुकर गुंजार ।
 यह बहार दिन चार की बहुरि कँटीली डार ॥
 बहुरि कँटीली डार होहिगी गोषम आये ।
 लुवैं चलैंगी संग अंग सब जैहैं ताये ॥
 वरनै दीनदयाल फूल जौ लों तो पाहीं ।
 रहे घेरि चहुँ फेरि फेरि अलि ऐहैं नाहीं ॥ ६ ॥
 दूटे नख रद केहरो वह बल गयो थकाय ।
 हाय जरा अब आइ कै यह दुख दियो बढ़ाय ॥
 यह दुख दियो बढ़ाय चहुँ दिशि जंघुक गाजैं ।
 ससक लोमरी आदि स्वतंत्र करैं सब राजैं ॥
 वरनै दीनदयाल हरिन बिहरैं सुख लूटे ।
 पंगु भयो मृगराज आज नख रद के दूटे ॥ ७ ॥

(६४)

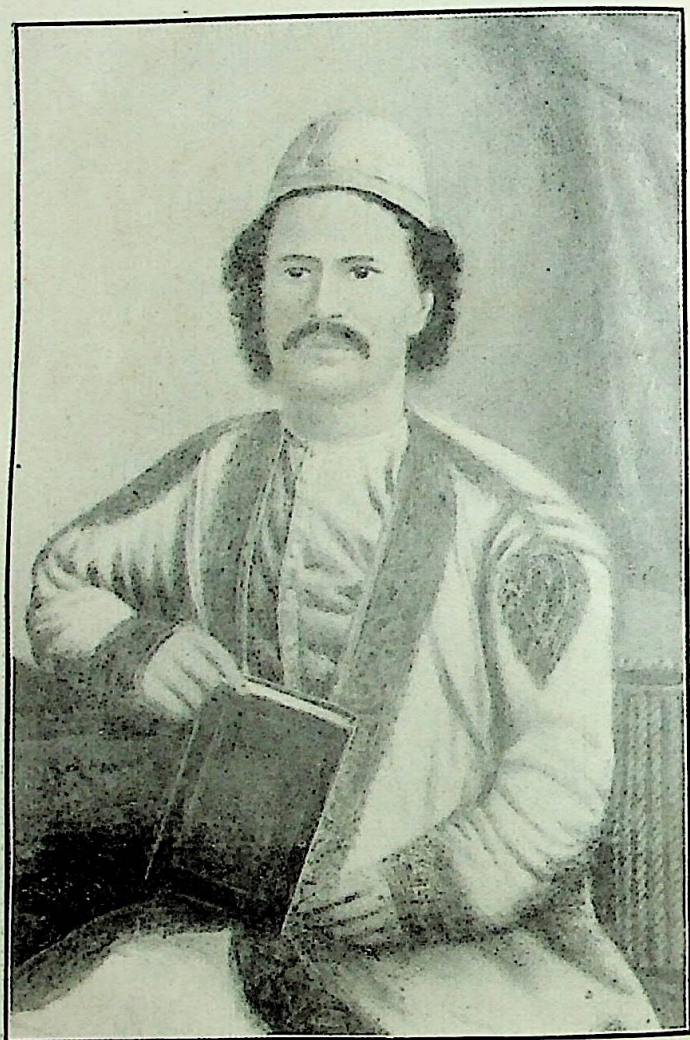
पैहो कीरति जगत में पीछे धरो न पाँव ।
 छत्रो कुल के तिलक हे महासमर या ठाँव ॥
 महासमर या ठाँव चले सर कुंत कृपानें ।
 रहे बीरगण गाजि पीर उर में नहिँ आनें ॥
 बरनै दीनदयाल हरखि जौ तेग चलैहो ।
 हँहो जीते जसी मरे सुरलोकहि पैहो ॥ ८ ॥
 भारी भार भर्यो बनिक तरिबों सिंधु अपार ।
 तपी जरजरी फँसि परी खेवनहार गँवार ॥
 खेवनहार गँवार ताहि पर पौन भुकोरै ।
 रुकी भँवर में आय उपाय चले न करोरै ॥
 बरनै दीनदयाल सुमिर अब तू गिरधारी ।
 आरत जन के काज कला जिन निज संभारी ॥ ९ ॥
 आछी भाँति सुधारि कै खेत किसान बिजोय ।
 नतु पीछे पड़तायगो समै गयो जब खोय ॥
 समै गयो जब खोय नहीं फिरि खेती हैहै ।
 लेंहै हाकिम पोत कहा तब ताको दैहै ॥
 बरनै दीनदयाल चाल तजि तू अब पाछो ।
 सोउ न सालि सँभालि बिहँगन ते बिधि आछी ॥ १० ॥
 सोई देस बिचारि कै चलिये पथो सुचेत ।
 जाके जस आनंद को कविवर उपमा देत ॥
 कविवर उपमा देत रंक भूपति सम जामें ।
 आवागवन न होय रहे मुद मंगल तामें ॥

(६५)

बरनै दीनदयाल जहाँ दुख सोक न होई ।
 ए हो पथी प्रवीन देस को जैयो सोई ॥ ११ ॥
 कोई संगी नहिँ उतै, है इतही को संग ।
 पथी लेहु मिलि ताहि ते सब सों सहित उमंग ॥
 सब सों सहित उमंग वैठि तरनी के माहीं ।
 नदिया नाव सँजोग फेरि यह मिलि है नाहीं ॥
 बरनै दीनदयाल पार पुनि भेंट न होई ।
 अपनी अपनी गैल पथी जैहैं सब कोई ॥ १२ ॥
 ग्राहैं प्रबल अगाध जल या में तोछन धार ।
 पथी पार जो तू चहै खेवनहार पुकार ॥
 खेवनहार पुकार, और नहिँ कोऊ साथी ।
 और न चले उपाव नाव बिन एहो पाथी ॥
 बरनै दीनदयाल नहीं अब वूडैं थाहैं ।
 रहे महामुख वाय असन को भारी ग्राहैं ॥ १३ ॥ ✓
 राही सोवत इत कितै चोर लगैं चहुँ पास ।
 तो निज धन के लेन को गिनैं नींद की स्वास ॥
 गिनैं नींद की स्वास बास बसि तेरे डेरे ।
 लिये जात बनि मीत माल ये साँझ सबेरे ॥
 बरनै दीनदयाल न चीन्हत है तू ताही ।
 जाग जाग रे जाग इतै कित सोवत राही ॥ १४ ॥ ✓
 हारे भूली गैल में गे अति पाय पिराय ।
 सुनो पथी अब तो रह्यो थोरो सो दिन आय ॥
 ५

(६६)

थोरो सो दिन आय रहे हैं संग न साथी ।
 या बन हैं चहुँ ओर घोर मतवारे हाथी ॥
 बरनै दीनदयाल ग्राम सामीप तिहारे ।
 सूधे पथ को जाहु भूलि भरमो कित हारे ॥ १५ ॥
 चारो दिसि सूझै नहीं यह नद धार अपार ।
 नाव जर्जरी भार बहु खेवनहार गँवार ॥
 खेवनहार गवार ताहि पर है मतवारो ।
 लिये भौंर में जाय जहाँ जलजंतु अखारो ॥
 बरनै दीनदयाल पथी बहु पौन प्रचारो ।
 पाहि पाहि रघुवीर नाम धरि धीर उचारो ॥ १६ ॥
 (अन्योक्ति कल्पद्रुम)



भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

(६७)

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

ये आधुनिक हिन्दी के प्रवर्तक और जन्म-दाता माने जाते हैं। इनका जन्म भाद्रपद शु० ७ सं० १६०७ (६ सितम्बर १८५०) को एक बहुत प्रतिष्ठित और बड़े अग्रवाल कुल में, हिन्दी के प्रतिष्ठित कवि बा० गोपालदास जी के यहाँ हुआ था। बाल्यावस्था में ही इनकी बुद्धि बहुत प्रखर थी और काव्य तथा साहित्य की ओर इनका बहुत अधिक अनुराग था। बाल्यावस्था में इनकी शिक्षा बहुत ही थोड़ी हुई थी, पर पीछे अध्ययन करके इन्होंने बहुत कुछ विद्या प्राप्त की थी और अपनी उत्कट प्रतिभा के कारण अनेक विषयों के बहुत बड़े ज्ञाता हो गये थे। कुछ दिनों तक इन्होंने “कवि वचन सुधा” और “हरिश्चन्द्र मैगजीन” आदि मासिक पत्र निकाले थे और अपने नाम से एक स्कूल भी स्थापित किया था, जो अब बहुत उन्नति पर है। ये कुछ दिनों तक आनरेरी मजिस्ट्रेट भी थे। ये बहुत बड़े उदार, दाता और अपव्ययी थे। इनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी और इनके लिखे हुए नाटकों, आख्यायिकाओं, काव्यों, स्तोत्रों और परिहासपूर्ण तथा ऐतिहासिक पुस्तकों आदि की संख्या सब मिला कर सैंकड़ों तक पहुँचती है। ६ जनवरी १८८५ को केवल ३५ वर्ष की अवस्था में इनका शरीरान्त हो गया।

(६८)

यमुना-वर्णन

तरनि-तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये ।
 भुके कूल सौ जल-परसन हित मनहुँ सुहाये ॥
 किधौँ मुकुर मैं लखत उभकि सब निज निज सोभा ।
 कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा ॥
 मनु आतप बारन तीर को सिमिटि सबै छाये रहत ।
 कै हरि-सेवा हित नै रहे निरखि नैन मन सुख लहत ॥१॥
 कहूँ तीर पर कमल अमल सोभित बहु भाँतिन ।
 कहूँ सैवालन मध्य कुमुदिनी लगि रहि पाँतिन ॥
 मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखत निज सोभा ।
 कै उमगे प्रिय प्रिया प्रेम के अनगिन गोभा ॥
 कै करिकै कर बहु पोय कौं टेरत निज ढिग सोहई ।
 कै पूजन को उपचार लै चलति मिलन मन मोहई ॥२॥
 कै पिय पद उपमान जानि एहि निज उर धारत ।
 कै मुख करि बहु भृङ्गन मिस अस्तुति उच्चारत ॥
 कै ब्रज तियगन बदन कमल की झलकत भाई ।
 कै ब्रज हरिपद-परस-हेत कमला बहु आई ॥
 कै सात्विक अरु अनुराग दोउ ब्रजमण्डल बगरे फिरत ।
 कै जानि लच्छमी-भौन एहि करि सतधा निज जल धरत ॥३॥
 तिन पै जेहि छिन चन्द जोति राका निसि आवति ।
 जल में मिलि कै नभ अवनी लौं तान तनावति ॥

(६६)

होत मुकुरमय सवै तवै उज्जल इक ओभा ।
 तन मन नैन जुड़ात देखि सुन्दर सो सोभा ॥
 सो को कवि जो छवि कहि सकै ताछन जमुना नोर की ।
 मिलि अचनि और अम्बर रहत छवि इक सो नभ तीर की ॥४॥
 परत चन्द्र-प्रतिबिम्ब कहँ जल मधि चमकायो ।
 लोल लहर लहि नचत कबहुँ सोई मन भायो ॥
 मनु हरि दरसन हेत चन्द जल बसत सुहायो ।
 कै तरङ्ग कर मुकुर लिये सोमित छवि छायो ॥
 कै रास रमन में हरि मुकुट आभा जल दिखरात है ।
 कै जल-उर हरि मूरति बसति वा प्रतिबिम्ब लखात है ॥५॥
 कबहुँ होत सत चन्द कबहुँ प्रगटत दुरि भाजत ।
 पवन गवन बस विम्ब रूप जल में बहु साजत ॥
 मनु ससि भरि अनुराग जमुन जल लोटत डोलै ।
 कै तरङ्ग की डोर हिंडोरन करत कलोलै ॥
 कै बाल गुड़ी नभ में उड़ी सोहत इत उत धावती ।
 कै अवगाहत डोलत कोऊ ब्रजरमनी जल आवती ॥६॥
 मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटि जात जमुन जल ।
 कै तारागन ठगन लुकत प्रगटत ससि अविकल ॥
 कै कालिन्दी नीर तरङ्ग जितो उपजावत ।
 तितनो ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत ॥
 कै बहुत रजत चकई चलत कै फुहार जल उच्छरत ।
 कै निसिपति मल्ल अनेक विधि उठि बैठत कसरत करत ॥७॥

(७०)

कूजत कहुँ कलहंस कहुँ मज्जत पारावत ।
 कहुँ कारंडव उड़त कहुँ जलकुक्कुट धावत ॥
 चक्रवाक कहुँ बसत कहुँ बक ध्यान लगावत ।
 सुक पिक जल कहुँ पियत कहुँ भ्रमरावलि गावत ॥
 कहुँ तट पर नाचत मोर बहु रोर विविध पच्छी करत ।
 जलपान न्हान करि सुख भरे तट सोभा सब जिय धरत ॥८॥

कहुँ बालुका बिमल सकल कोमल बहु छाई ।
 उज्जल झलकत रजत सिढ़ी मनु सरस सुहाई ॥
 पिय के आगम हेत पाँवड़े मनहुँ विछाये ।
 रतनरासि करि चूर कूल मैं मनु बगराये ॥
 मनु मुक्त माँग सोमित भरी श्याम नीर चिकुरन परसि ।
 सतगुन छायो कै तीर मैं ब्रजनिवास लखि हिय हरसि ॥९॥

x

x

x

x

मेरी भव-बाधा हरो , राधा नागरि सोइ ।
 जा तन की भाई परै , स्याम हरित दुति होइ ॥
 स्याम हरित दुति होइ, परै जा तन को भाई ।
 पाँय पलोटत लाल , लसत साँवरे कन्हवाई ॥
 श्रीहरिचन्द बियोग , पीतपट मिलि दुति हेरी ।
 नित हरि जा रँग रँगो , हरौ बाधा सोइ मेरी ॥ १ ॥
 सोहत ओढ़े पीत पट , स्याम सलोने गात ।
 मनौ नीलमनि सैल पर, आतप पखो प्रभात ॥

(७१)

आतप पखो प्रभात , किधौ बिजुरी घन लपटो ।
 जरद चमेली तरुतमाल , मैं सोभित सपटी ॥
 प्रिया रूप अनुरूप , जानि हरिचन्द विमोहत ।
 स्थाम सलोने गात , पोत पट ओढे सोहत ॥ २ ॥
 इन दुखियाँ अँखियान कों , सुख सिरजौई नाहिं ।
 देखे वनै न देखते , बिन देखे अकुलाहिं ॥
 बिनु देखे अकुलाहिं , बावरी है है रोवैं ।
 उधरी उधरी फिरैं , लाजतजि सब सुख खोवैं ॥
 देखे श्री हरिचन्द , नयन भरि लखैं न सखियाँ ।
 कठिन प्रेम गति रहत , सदा दुखिया ये अँखियाँ ॥ ३ ॥

(सतसई शृंगार से)

x

x

x

x

पियारे याको नाँव नियाव ।

जो तोहिं भजै ताहि नहिं भजनों कोनो भलो बनाव ॥
 बिनु कलु किये जानि अपनो जन दूनो दुख तेहि देनो ।
 भली नई यह रीति चलाई उलटो अवगुन लेनो ॥
 हरीचन्द यह भलौ निवेखो हैके अन्तरजामी ।
 चोरन छाँड़ि छाँड़ि कै डाँड़ो उलटो धन कै स्वामो ॥

भरोसो रोक्कन ही लखि भारी ।

हमहूँ को विश्वास होत है मोहन पतित - उधारी ॥
 जो ऐसो सुभाव नहिं होतो क्यों अहीर कुल भायो ।
 तजि कै कौस्तुभ सो मनि गल क्यों गुंजा हार धरायो ॥

(७२)

क्रोट मुकुट सिर छोड़ि पखौआ मोरन को क्यों धाख्यो ।
 फैंट कसी टेंटिन पै मेवन की क्यों स्वाद बिसाख्यो ॥
 ऐसी उलटी रीझ देखि कै उपजत है जिय आस ।
 जग-निन्दत हरिचन्दहु को अपनावहिंगे करि दास ॥

सम्हारहु अपने को गिरधारी ।

मोर मुकुट सिर पाग पैच कसि राखहु अलक सँवारी ॥
 हिय हलकत बनमाल उठावहु मुरली धरहु उतारी ।
 चक्रादिकन सान दै राखो कंकन फँसन निवारी ॥
 नूपुर लेहु चढ़ाय किंकिनी खींचहु करहु तयारी ।
 पियरो पट परिकर कटि कसि कै बाँधौ हो बनवारी ॥
 हम नहीं उनमें जिनको तुम सहजहि दीनों तारी ।
 बानो जुगओ नीके अब की हरीचन्द की बारी ॥

रहै क्यों एक म्यान असि दोय ।

जिन नैनन में हरि रस छायो तेहि क्यों भावै कोय ॥
 जा तन मन में रमि रहे मोहन तहाँ ज्ञान क्यों आवै ।
 चाहो जितनी बात प्रबोधो ह्यौ को जो पतियावै ॥
 अमृत खाइ अब देखि इनारुन को मूरख जो भूलै ।
 हरीचन्द ब्रज तो कदली बन काटौ तो फिरि फूलै ॥ ✓

(७३)

पं० बदरीनारायण चौधरी

इनका जन्म मिरजापुर के प्रतिष्ठित रईस और परम कर्मनिष्ठ तथा धार्मिक पं० गुरुचरण लाल उपाध्याय के यहाँ भाद्रपद कृष्ण ६ सं० १८१२ को हुआ था। बाल्यावस्था में इन्हें हिन्दी, संस्कृत, अँगरेजी और फारसी की अच्छी शिक्षा मिली थी। इनके अतिरिक्त निशानेवाजी, शिकार और संगीत आदि का भी इन्हें अच्छा अभ्यास था। ये गद्य और पद्य दोनों के सिद्धहस्त लेखक थे। उर्दू में ये अपना उपनाम “अब्र” और हिन्दी में “प्रेमघन” रखते थे। इन्होंने पहले “आनन्द का-दम्बिनी” नामक मासिक पत्रिका आर फिर “नागरी नीरद” नामक एक साप्ताहिक पत्र भी निकाला था। इनकी रचनाएँ तो बहुत सी हैं, परन्तु प्रकाशित बहुत कम हुई हैं। इनकी मृत्यु सं० १८८० में हुई थी।

(७४)

आनन्द-बधाई

(सन् १९०३ में संयुक्त प्रान्त की कचहरियों में नागरी लिपि का प्रवेश होने के समय यह कविता लिखी गई थी ।)

पै भागनि सों जब भारत के सुख दिन आये ।
 अँगरेजी अधिकार अमित अन्याय नखाये ॥
 लह्यो न्याय सब ही छीने निज स्वत्वहि पाई ।
 दुरभागिनि बचि रही यही अन्याय सताई ॥
 लह्यो देशभाषा अधिकार सबै निज देशन ।
 राज काज आलय विद्यालय बीच ततच्छन ॥
 पै इत विरचि नाम उर्दू को “हिन्दुस्तानी” ।
 अरबी बरनहुँ लिखित सके नहिं बुध पहिचानो ॥
 “हिन्दुस्तानी” भाषा कौन ? कहाँ तैं आई ।
 को भाषत, किहि ठौर कोऊ किन देहु बताई ॥
 कोउ साहिव खपुष्प सम नाम धख्यो मनमानो ।
 होत बड़न सों भूलहु वड़ी सहज यह जानो ॥
 हरि हिन्दी की बोली अरु अच्छर अधिकारहिं ।
 लै पैठारे बीच कचहरी बिना बिचारहिं ॥
 जाको फल अतिसय अनिष्ट लखि सब अकुलाने ।
 राज-कर्मचारी अरु प्रजा वृन्द बिलखाने ॥
 संसोधन हित बारहिं बार कियो बहु उद्यम ।
 होय असम्भव किमि सम्भव, कैसे खल उत्तम ॥

(७५)

हिन्दी भाषा सरल चह्यो लिखि अरबी वरनन ।
 सो कैसे है सकै विचारहु नेक, विचच्छन ॥
 मुगलानी, ईरानी, अरबी, इङ्गलिस्तानी ।
 तिय नहिं हिन्दुस्तानी बानी सकत बखानी ॥
 ज्यों लोहार गढ़ि सकत न सोने के आभूषन ।
 अर कुम्हार नहिं वनै सकत चाँदी के वरतन ॥
 कलम कुल्हाड़ी सों न बनाय सकत कोउ जैसे ।
 सूजा सों मलमल पर बखिया होत न तैसे ॥
 कैसे हिन्दी के कोउ शुद्ध शब्द लिखि लैहै ।
 अरबी अच्छर बीच, लिखेहु पुनि किमि पढ़ि पैहै ॥
 निज भाषा को सबद लिखो पढ़ि जात न जामैं ।
 पर भाषा को कहौ पढ़ै कैसे कोउ तामैं ॥
 लिख्यो हकीम औषधी में 'आलू बोखारा' ।
 उल्लू बन्यो भोलवी पढ़ि 'उल्लू बेचारा' ॥
 साहिब 'किस्ती' चही, पठाई मुनसी 'कसबी' ।
 'नमक' पठायो भई 'तमस्सुक' की जब तलबो ॥
 पढ़त 'सुनार' 'सितार' 'किताब' 'कबाब' बनावत ।
 'दुआ' देतहूँ 'दगा' देन को दोष लगावत ॥
 मेम साहिबा 'बड़े बड़े मोती' चाह्यो जब ।
 बड़ी बड़ी मूली पठवायो तसिल्दार तब ॥
 उदाहरन कोउ कहूँ लगि याके सकै गनाई ।
 एकहु सबद न एक भाँति जब जात पढ़ाई ॥

(७६)

दस औ बीस भाँति सो तौ पढ़ि जात घनेरे ।
 पढ़े हजार प्रकारहु * सों जाते बहुतेरे ॥
 जेर जवर अरु पेस स्वरन को काम चलावत ।
 बिन्दी की भूलनि सौ सौ विधि भेद बनावत ॥
 चारि प्रकार जकार, सकार, अकार तीन विधि ।
 होत हकार, तकार, यकार उभय विधि छल निधि ॥
 कौन सबद केहि बरन लिखे सों सुद्ध कहावत ।
 याको नियमन कोऊ लिखित लेसहिँ लसि आवत ॥
 यह बिचित्रताई जग और ठौर कहूँ नाहीं ।
 पँचमेली भाषा लिखि जात बरन उन माहीं ।
 जिनसे अधम बरन को अनुमानहुँ अति दुस्तर ।
 अवसि जालियन सुखद एक उर्दू को दफ़तर ॥
 जिहि तैं सौ सौ साँसति सहत सदा बिलखानी ।
 भोली भाली प्रजा इहाँ की अतिहि अयानी ॥
 भारत सिंहासन स्वामिनि जो रही सदा की ।
 जग में अब लौँ लहिन सक्यो कोऊ छवि जाकी ॥
 जासु बरनमाला गुन खानि सकल जग जानत ।
 बिन गुन गाहक सुलभ निरादर मन अनुमानत ॥
 राज-सभा सों अलग कई सौ बरस बितावत ।
 दोन प्रबोन कुटोन बीच सोभा सरसावत ॥

* भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने उर्दू में लिखे हुए एक शब्द का १००० प्रकार से पढ़ा जाना सिद्ध किया था ।

(७७)

बरसावत रस रही ज्ञान, हरि भक्ति, धरम नित ।
 सिच्छा अरु साहित्य सुधा सम्वाद आदि इत ॥
 कियो न बदन मलीन पीन बरु होत निरन्तर ।
 रही धीरता धारि ईस इच्छा परि निरभर ॥

भारत-वन्दना

जय जय भारत भूमि भवानी ।

जाको सुजस पताका जग के दशहूँ दिसि फहरानी ।
 सब सुख सामग्री पूरित ऋतु सकल समान सोहानी ॥
 जा श्री सोभा लखि अलका अरु अमरावती खिसानी ।
 धर्म सूर जित उयो नीति जहँ गई प्रथम पहिचानी ॥
 सकल कला गुन सहित सभ्यता जहँ सो सबहिँ सुझानी ।
 भए असंख्य जहाँ जोगी तापस ऋषिवर मुनि ज्ञानी ॥
 विबुध विप्र, विज्ञान सकल विद्या जिनतैं जग जानी ।
 जग विजयी नृप रहे कबहुँ जहँ न्याय निरत गुन खानी ॥
 जिन प्रताप सुर असुर नहूँ को हिम्मत बिनसि बिलानी ।
 कालहु सम अरि तृन समभूत जहँ के छत्री अभिमानी ॥
 बोर बधू बुध जननि रही लाखन जित सती सयानी ।
 कोटि कोटि जित कोटि पती रत बनिक बनिक धन दानी ॥
 सेवत शिल्प यथोचित सेवा सूद समृद्धि बढ़ानी ।
 जाको अन्न खाय ऐंडत जग जाति अनेक अधानी ॥
 जाकी सम्पति लुटत हजारन बरसनहूँ न खोटानी ।

(७८)

सहत सहस बरिसन दुख नित, नव जो न ग्लानि उर आनी॥
 धन्य धन्य पूरब सम जग नृपगन मन अजहुँ लोभानी ।
 प्रनमत तीस कोटि जन अजहुँ जाहि जोरि जुग पानी ॥
 जिनमें भलक एकता की लखि जगमति सहमि सकानी ।
 ईस कृपा लहि बहुरि प्रेमघन बनहु सोई छबि छानी ॥
 सोइ प्रताप गुणजन गर्वित है भरी पुरी धन धानी ।

(७६)

पं० प्रतापनारायण मिश्र

ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और इनका जन्म अश्विन कृष्ण ६ सं० १९१३ को पं० संकटाप्रसाद मिश्र ज्योतिषी के यहाँ हुआ था। इन्हें बाल्यावस्था में शिक्षा बहुत कम मिली थी, पर इन्होंने स्वयं ही संस्कृत और फारसी का अच्छा अध्ययन किया था। ये बड़े हास्यप्रिय और स्वतंत्र प्रकृति के मनुष्य थे। भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र को कविताएँ पढ़ कर इन्हें भी कविता करने का शौक हुआ। सन् १८८३ में इन्होंने “ब्राह्मण” नामक एक मासिक पत्र निकाला था जो प्रायः एक वर्ष तक चलता रहा। इन्होंने कुछ दिनों तक कालाकाँकर के दैनिक पत्र “हन्दोस्तान” के संपादन विभाग में भी काम किया था। ये नाटक भी लिखते थे और अभिनय भी बहुत अच्छा करते थे। इनकी लिखी और अनुवाद की हुई बहुत सी पुस्तकें हैं। उनमें नाटक, उपन्यास, कविता आदि सभी विषय हैं। यथा—राजसिंह, इन्दिरा, संगीत शाकुन्तल, कलिकौतुक रूपक, हठी हमीर, गोसंकट नाटक, शृंगार-विलास आदि। उर्दू में भी ये अच्छी कविता करते थे; और संस्कृति तथा फारसी में कभी कभी कुछ कहा करते थे। पुराने कवियों और लेखकों में इनका बहुत ऊँचा स्थान है। ये प्रायः रोगी रहा करते थे। इनकी शरीरान्त आषाढ़ शुक्ल ४ सं० १९५१ को हुआ था।

(८०)

गौ-महिमा

गैया माता तुमका सुमिरों, कीरत सब ते बड़ी तुम्हारि ।
करौ पालना तुम लरिकन कै, पुरिखन बैतरनी देउ तारि ॥
तुम्हरे दूध दही की महिमा, जानैं देव पितर सब कोय ।
कोअस तुम बिन दूसर जिहि का, गोबर लगे पवित्र होय ॥१॥

जिनके लरिका खेती करिकै, पालैं मनइन के परिवार ।
ऐसी गाइन की रख्या माँ, जो कुछ जतन करौ सो ध्यार ॥
घास के बदले दूध पियावैं, मरि के देंय हाड़ औ चाम ।
धनि वह तन मन धन जो आवैं, ऐसी जगदम्मा के काम ॥२॥

आल्ह खण्ड की पोथी लैकै, द्याखौ तनु कलिखा कस आय ।
“जहाँ रोसैंयाँ है ऊदन कै, भुरवा मुगुल पछारे गाय ॥”
कोअस हिन्दू ते पैदा है, जोअस हालु देखि एक साथ ।
रक्त के आँसन रोय न उठिहै, माथे पटकि दुहत्या हाथ ॥३॥

सब दुख सुख तो जैसे तैसे, गाइन की नहिं सुनै गुहार ।
जब सुधि आवैं मोहि गैयन की, नैनन बहे रक्त की धार ॥
हियाँ की बातें तौ हियनै रहिगैं, अब कम्पू कै सुनो हवाल ।
उहाँके हिन्दू तन मन धन से, निस दिन करैं धरम प्रतिपाल ॥४॥

(८१)

विनय

शरणागत-पाल कृपाल प्रभो ! हम को इक आश तुम्हारी है ।
 तुम्हारे सम दूसर और कोऊ नहिं दीनन को हितकारी है ॥
 सुधि लेत सदा सब जीवन की अति ही करुना बिस्तारी है ।
 प्रतिपाल करै बिन ही बदले अस कौन पिता महतारी है ॥
 जब नाथ दया करि देखत हौ छुटि जाति बिथा संसारी है ।
 बिसराय तुम्हें सुख चाहत जो अस कौन निदान अनारी है ॥
 परवाहि तिन्हें नहिं स्वर्गहु की जिनको तव कीरति प्यारी है ।
 धनि है धनि है सुखदायक जो तव प्रेम-सुधा अधिकारी है ॥
 सब भाँति समर्थ सहायक हौ तव आश्रित बुद्धि हमारी है ।
 परताप नारायण तौ तुम्हारे पद पंकज पै बलिहारी है ॥ १ ॥
 पितु मातु सहायक स्वामि सखा तुमही इक नाथ हमारे हौ ।
 जिनके कछु और अधार नहीं तिनके तुम हो रखवारे हौ ॥
 सब भाँति सदा सुखदायक हौ दुख दुर्गुन नासनहारे हौ ।
 प्रतिपाल करौ सगरे जग को अतिसै करुना उर धारे हौ ॥
 भूले हमही तुम को तुम तौ हमरी सुधि नाहिं बिसारे हो ।
 उपकारन को कछु अंत नहीं छिन हो छिन जो बिस्तारे हौ ॥
 महाराज महा महिमा तुम्हरी समुझैं बिरले बुधिवारे हौ ।
 शुभ शान्तिनिकेतन प्रेमनिधे ! मन-मन्दिर के उजियारे हौ ॥
 यहि जीवन के तुम जीवन हौ इन प्रानन के तुम प्यारे हौ ।
 तुम सो प्रभु पाय प्रताप हरी किहि के अब और सहारे हौ ॥ २ ॥

(८२)

देश की दुर्दशा

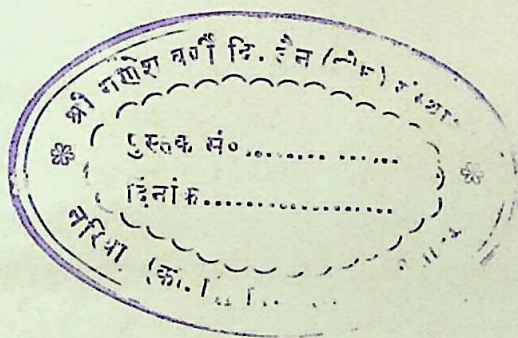
तब लखि हो, जहँ रह्यो एक दिन कंचन बरसत ।
 तहँ चौथाई जन रुखी रोटिहुँ कहँ तरसत ॥
 जहँ आमन की गुठली अरु बिरछन की छालें ।
 ज्वार चून महँ मेलि लोग परिवारहिं पालें ॥
 नौन तेल लकरी घासहु पर टिकस लगे जहँ ।
 चना चिरौंजी मोल मिलै जहँ दीन प्रजा कहँ ॥
 जहाँ कृषी बाणिज्य शिल्प सेवा सब माहीं ।
 देशिन के हित कछू तत्व कहँ कैसेहु नाहीं ॥
 कहिय कहाँ लगि नृपति दवे हैं जहँ रिन भारन ।
 तहँ तिनकी धन कथा कौन जे गृही सधारन ॥
 जहँ महीप लगि रजोडण्ट सों यहि डर डरहीं ।
 अस न होय कहँ तनक रुठि धन धामहिं हरहीं ॥
 तहँ साधारन लोगन की तौ कहा चलाई ।
 नित घेरे ही रहत दुसह दारिद दुचिताई ॥
 यहि कर केवल हेतु यहै जो नए नए नित ।
 कर अरु चन्दा देन परैं प्रति प्रजहि अपरिमित ॥
 कछू काम कोउ करै कहँ ते कोऊ आवै ।
 कहँ कछु घटना होय हिन्द ही द्रव्य लगावै ॥
 लेनहार सुख दुःख आय व्यय कबहुँ न पूछै ।
 देत देत सब भाँति होहिं हम छिन छिन छूछैं ॥

(८३)

जे अनुशासन करन हेत इत पठये जाहीं ।
 ते बहुधा बिन काज प्रजा सौ मिलत लजाहीं ॥
 जिते दिवस ह्याँ रहहि तितेकहु लघु अवसर महँ ।
 जन-रक्षण हित करहि न स्वीकृत कलुक कष्ट कहँ ॥
 तनिकहु भोग बिलास माहिं त्रुटि करन न चहहीं ।
 नेकहि शीघ्रम लखे परबतन कर पथ गहहीं ॥
 निज इच्छा अनुसार करहि सब सेत कृष्ण कृति ।
 कलु दिन महँ चल देहि बिलायत यह कुजोग अति ॥
 चलत जिते कानून इहाँ उनकी गति न्यारी ।
 जस चाहहि तस फेरि सकहि तिन कहँ अधिकारी ॥
 बड़े बड़े बारिस्टर बहुधा बकि बकि हारैं ।
 पै हाकिम जन जस जिय चाहैं तस करि डारैं ॥
 निर्धन निहछल निस्सहाय कर कहँ न निबाह ।
 धनिक चलाक सपच्छ पुरुष पार्वह जय लाह ॥
 प्रजा न जानहि कौन इकट केहि अर्थ बन्यो कब ।
 पै यह अचरज ! तेहि बन्धन महँ कसे रहैं सब ॥
 समय परे पर खोय मान धन दण्ड सहै हैं ।
 घर बाहर के काज छोड़ि दौरतहि रहै हैं ॥
 उदर हेत जे सिर बेंचन पलटन महँ जाहीं ।
 गोरे रँग बिनु ठीक आदरति वेऊ नाहीं ॥
 गौर स्याम रँग भेद भाव अस दस दिस छायो ।
 जिहि नेटिव-नामहि कहँ तुच्छ प्रतच्छ दिखायो ॥

(८४)

वे बधहू करि कबहुँ कबहुँ कोरे बचि जाहीं ।
 पै ये कहुँ कहुँ लंकुट लेतहू धमकी खाहीं ॥
 उनके सुख हित जतन करत हाकिम सब रहहीं ।
 इनके जिय शत शंक उठहि जब निज दुख कहहीं ॥





श्रीधर पाठक

(८५)

पं० श्रीधर पाठक

श्रीयुत पं० श्रीधर पाठक जी का जन्म माघ कृष्ण चतुर्दशी सं० १९१६ (११ जनवरी १९६०) को एक प्रतिष्ठित सारस्वत ब्राह्मण कुल में आगरा जिले के जोन्धरी ग्राम में हुआ था। आपके पिता पं० लीलाधर बहुत ही सच्चरित्र, सज्जन और भगवद्भक्त थे। पं० श्रीधर पाठक जी बाल्यावस्था से ही बहुत होनहार और बुद्धिमान् थे और दस ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही आपने संस्कृत में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी। फारसी का भी आपको अच्छा ज्ञान था। हिन्दी की प्रवेशिका परीक्षा में आप अपने प्रान्त भर में सर्वप्रथम हुए थे और एन्ट्रेंस की परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में पास की थी। पहले आप कलकत्ते में सेन्सस कमिश्नर के दफ्तर में और तब इस प्रान्त के लाट साहब के दफ्तर में नौकर हुए। आप कुछ दिनों तक भारत सरकार के दफ्तर के सुपरिन्टेन्डेन्ट भी थे। अन्त में आप पेन्शन लेकर प्रयाग में रहने लगे थे। आप ब्रज भाषा और खड़ी बोली दोनों में ही बहुत सुन्दर कविता करते थे। आपने गोल्डस्मिथ की कई कविताओं का ऊजड़ ग्राम, श्रान्त पथिक और एकान्तवासी योगी के नाम से और कालिदास के ऋतुसंहार का भी बहुत सुन्दर पद्यानुवाद किया है। आपकी देहरादून, शिमला और काश्मीर-सुखमा आदि कई मौलिक रचनाएँ भी हैं जिनसे सिद्ध होता है कि आप प्राकृतिक

(८६)

सौन्दर्य के बहुत बड़े प्रेमी और रसिक थे । हिन्दी के आधुनिक कवियों में आपका स्थान बहुत ऊँचा था । आप लखनऊ हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के सभापति थे । अभी ढाई तीन वर्ष हुए, आपका देहान्त हुआ है ।

(८७)

प्राकृतिक शोभा

प्रकृति इहाँ एकान्त बैठि निज रूप सँवारति ।
 पल पल पलटति भेस छनिक छवि छिन छिन धारति ॥
 विमल-अम्बु-सर मुकुरन महुँ मुख-विम्ब निहारति ।
 अपनी छवि पै मोहि आपही तन मन वारति ॥
 सजति, सजावति, सरसति, हरसति, दरसति प्यारी ।
 बहुरि सराहति भाग पाय सुठि चित्तरसारी ॥
 बिहरति विविध-बिलास-भरी जोवन के मद सनि ।
 ललकति, किलकति, पुलकति, निरखति, थिरकति, बनि ठनि ॥
 मधुर मंजु छवि पुंज छटा छिरकति बन कुंजन ।
 चितवति, रिझवति, हसति, लसति, मुसक्याति, हरति मन ॥
 यहुँ सुरूप सिंगार रूप धरि धरि बहु भाँतिन ।
 सर, सरिता, गिरि, सिखर, गगन, गह्वर, तरुवर, नृन ॥
 पूरन करिवै काज कामना अपने मन की ।
 किंकरता करि रह्यौ प्रकृति-पंकज-चरनन की ॥
 चहुँदिसि हिमगिरि-सिखर, हरित-मनि मौलि-अवलि मनु
 स्रवत सरित-सितधार, द्रवत सोइ चन्द्रहार जनु ॥
 फल फूलन छवि छटा छई जो बन उपवन की ।
 उदित भई मनु अवनि-उदर सों, निधिरतनन की ॥
 तुहिन-सिखर, सरिता, सर, बिपिनन की मिलि सो छवि ।
 छई मंडलाकार, रही चारहुँ दिसि यों फबि ।

(८८)

मानहु मनिमय मौलि-माल-आकृति अलबेली ।
 बाँधी बिधि अनमोल गोल भारत-सिर सेली ॥
 अर्द्ध चन्द्र सम सिखर-स्रैनि कहूँ यों छबि छाई ।
 मानहुँ चन्दन-धौरि, गौरि-गुरु, खौरि लगाई ॥
 पुनि तिन स्रैनि बीच बितस्ता रेख जु राजति ।
 वैष्णव "श्री" अरु शिव-त्रिशूल की आभा भ्राजति ॥
 हिम स्रैनि सों घिख्यौ अद्रिमंडल यह रुरौ ।
 सोहत द्रोनाकार सृष्टि-सुखमा-सुख-पूरौ ॥
 बहु बिधि दृश्य अदृश्य कला कौशल सों छाँयौ ।
 रञ्जन निधि नैसर्ग मनहु बिधि दुर्ग बनायौ ॥
 अथवा बिमल बटोर विश्व की निखिल निकाई ।
 गुप्त राखिबे काज सुदृढ़ सन्दूक बनाई ॥
 कै यह जादू भरी विश्वबाजीगर थैली ।
 खेलत में खुलि परी शैल के सिर पर फैली ॥
 पुरुष प्रकृति कौं किधौं जबै जोवन रस आयौ ।
 प्रेम-केलि रस-रेलि करन रँग-महल सजायौ ॥
 खिली प्रकृति-पटरानी के महलन फुलवारी ।
 खुली धरी कै भरी तासु सिंगार-पिटारी ॥
 कै यह विकसित ब्रह्म-बाटिका को कोउ क्यारो ।
 जोगिराज ने इहाँ जोग बल पैंचि उतारी ॥
 कै सामग्री सहित भैरवीचक्र मभारी ।
 परिकल्पित करि धरी शक्तिपूजन की थारी ॥

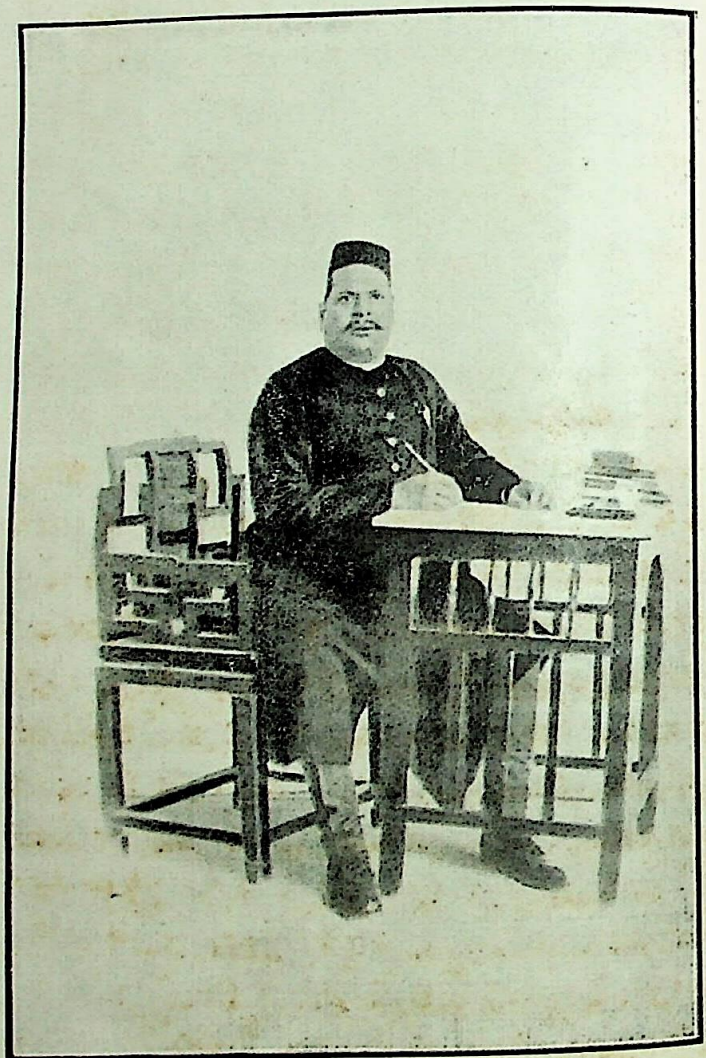
(८६)

किधौं चढ़ायौ धाता ने भारत के मस्तक ।
 माया-मालिनि-रच्यौ चारु कुसुमन कौ गुच्छक ॥
 काम-धैनु कै रवि-हय की खुर-छाप सलौनी ।
 कै बसुधा पै सुधा-धार-ब्रह्मद्रव-द्रौनी ॥
 परमपुरुष की पटरानी माया कौ स्यन्दन ।
 मंडप छत्र उतारि धख्यौ, उतख्यौ कै नन्दन ॥
 कै जब लै शिव चले दक्ष-तनया के अंगन ।
 गिरिशृङ्गन गिरि खिल्यौ प्रिया के कर कौ कंगन ॥
 विष्णु-नाभि ते उग्यौ सुन्यौ जो कमल सहसदल ।
 कै यह सोई सुभग स्वयम्भू कौ सुजन्म-थल ॥
 प्रकृति नटी कौ पटी-रहित प्रगथ्यौ नाटक-घर ।
 कै शिव-तंत्र सद्दीक खुल्यौ विलसत टिखटी पर ॥
 कै त्रैलोक्य-विभूति-भरित अवधूत-कमंडल ।
 कै तप-पुंज-प्रसूत विश्व-शोभा-श्री मंडल ॥
 सुरपुर अरु सुरकानन की सुठि सुन्दरताई ।
 त्रिभुवनमोहनकरनि कविनु बहु वरनि सुनाई ॥
 सो सब कानन सुनी, किन्तु नैनन नहि देखी ।
 जहँ तहँ पोथिन पढ़ी, पै सुपरतच्छ न पेखी ॥
 सो कवियन जो कही कलित सुर-लोक-निकाई ।
 याही कौ अवलोकि एक कल्पना बनाई ॥
 सुरपुर अरु कश्मीर दोउन में को है सुन्दर ।
 को सोभा कौ भौन रूप कौ कौन समुन्दर ?

(६०)

काकों उपमा उचित दैन दोउन में काकी ।
 याकों सुरपुर की अथवा सुरपुर काँ याकी ?
 याकों उपमा याही की मोहिं देत सुहावै ।
 या सम दूजौ ठौर सृष्टि में दृष्टि न आवै ॥
 यहै स्वर्ग सुरलोक, यहै सुरकानन सुन्दर ।
 यहिं अमरन कौ ओक, यहैं कहूँ बसत पुरन्दर ॥
 सो श्रीधर-दृग बसी प्रेम-अम्बुद-रस-दैनी ।
 पुन्य अवनि सुखसवनि-अलौकिक-सोभा-सैनी ॥
 पै सुजथारथ महिमा नहिं मोहिं शक्ति बखानन ।
 सहसानहि कहि सकहिंरु कहिं सहसनसहसानन ॥
 कविगन काँ कल्पना-कल्प-तरु, काम-धैनु सी ।
 मुनियन काँ तपधाम, ब्रह्म-आनन्द-पेनु सो ॥
 रसिकन काँ रसथान, प्रान, सरबस जीवन धन ।
 प्रकृति प्रेमिनी काँ सुकेलि-क्रीड़ा-कलोल-बन ॥

(काश्मीर सुखमा)



बा० जगन्नाथ दास रत्नाकर

(६१)

✓ बाबू जगन्नाथदास “रत्नाकर” बी० ए०

बाबू जगन्नाथदास जी रत्नाकर का जन्म भादों सुदी ५ सं० १६२३ को काशी में अग्रवाल वैश्य कुल में हुआ था। आपके पिता बाबू पुरुषोत्तदास जी फारसी के बहुत अच्छे ज्ञाता थे और उन्हें कविता से भी बहुत प्रेम था। इसी कारण रत्नाकर जी ने भी फारसी भाषा और हिन्दी कविता करना सीखा था। पहले आप फारसी में भी कुछ कविता करते थे, पर बाद में केवल ब्रज भाषा में ही कविता करने लगे। आज कल के ब्रज भाषा के कवियों में आप सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। आप हाल में कलकत्ता साहित्य सम्मेलन के सभापति भी हो चुके हैं। पहले आप कुछ दिनों तक आवागढ़ रियासत में नौकर थे; पर वहाँ का जल-वायु अनुकूल न होने के कारण आपने वह काम छोड़ दिया था और बाद में महाराज अयोध्या के प्राइवेट सेक्रेटरी हो गये थे। ओजस्विता और सरसता आदि में आपकी कविता की टक्कर की कविता शायद ही कहीं आधुनिक काव्यों में पाई जाती हो। बिहारी सत्सई पर आपने “बिहारी रत्नाकर” नाम की जो टीका लिखी है, उससे आपका अगाध पांडित्य प्रकट होता है। अभी हाल में आपकी लिखी “हरिश्चन्द्र” और “गंगावतरण” नाम की दो पुस्तकें निकली हैं, जिनमें से गंगावतरण पर आपको प्रयाग की हिन्दुस्तानी एकेडेमी से

(६२)

५००) का पुरस्कार भी मिला है। आज कल आप महारानी अयोध्या के प्राइवेट सेक्रेटरी हैं और सूरसागर का सम्पादन कर रहे हैं।

(६३)

गंगा का भूतल पर आगमन

सादर सबहिं नवाइ सोस अवनीस भगीरथ ।
 बढे बहुरि अगुवाइ धाइ चढ़ि वायु-वेग रथ ॥
 चली गंगहू संग अंग ओजनि उमगाए ।
 ज्यों कल-कीरति रहति सदासुकृतिहिं पछियाए ॥ १ ॥
 पुन्य-पाथ परिपूरि करति परवत-पथ पावन ।
 सब प्रतिबंध नसाइ आइ गिरि-कंध सुहावन ॥
 कूदी धरि युनि-धमक घोर ठाढ़ी खाढ़ी में ।
 परी गाज सी गाजि पुहुमि-पातक-पाढ़ी में ॥ २ ॥
 अति उछाह सौं उछरि परी फहराति फलंगति ।
 प्रबन-पाद सौं दूरि भूरि-बल-पूरि उमंगति ॥
 चढ़त चंद की चारु छटा ज्यों छिति छवि छावति ।
 उच्च-धाम-अभिराम-पाँति पच्छिम-दिसि आवति ॥ ३ ॥
 फलकि फेन उफनाइ आइ राजत जुरि जल पर ।
 मनहु सुधा-निधि महत सुधा उमहत तरि तल पर ॥
 फबति फुही की फाव धूम-धारा लौं धावति ।
 गिरि-कोरनि पर मोर-पंख-तोरन-छबि छावति ॥ ४ ॥
 जिनके हाड़ पहाड़-खाड़ बिथुरित तिहिं परसत ।
 सो लहि लहि बर बपुष जाइ सुरपुर सुख सरसत ॥
 जुरत न तिते बिमान जिते तारति इक संगहि ।
 निज प्रताप बल पर पहुँचावति गंग-तरंगहि ॥ ५ ॥

(६४)

विपुल बेग सौं जदपि गाजि गवनत जल तर कौं ।
 तउ सफरिनिहित होत सुपथ उमहत ऊपर कौं ॥
 निज अधोन पर ज्यों प्रवीन विक्रम न जनावैं ।
 बरु दै बाहँ उमाहि उच्च पद पर पहुँचावैं ॥ ६ ॥
 देव दनुज गंधर्व जच्छु किन्नर कर जोरे ।
 निज निज नारिनि संग अंग बहु भावनि बोरे ॥
 भय बिस्मय बिस्वास आस आनँद उर छाए ।
 दुहुँ कूलनि सुख-मूल स्वच्छ पर परे जमाए ॥ ७ ॥
 अद्भुत अकथ अनूप गंग-कौतुक कल देखत ।
 अति अलभ्य यह लाभ ललकि लोचन कौ लेखत ॥
 स्वस्ति-पाठ कोउ पढ़त कोऊ अस्तुति गुनि गावत ।
 कोऊ भंगीरथ भव्य भाग को राग कढ़ावत ॥ ८ ॥
 कोउ भुकि भाँकिन-चाय बाढ़ पर पाय जमावत ।
 पै भाई सौं भुलमुलाइ पाछैं हटि आवत ॥
 पुनि साहस करि सँभरि सकल खाढ़ी मैं उतरत ।
 पग पग पर दग दिए किए चित-वित अच्युत-रत ॥ ९ ॥
 कोउ ढिठाइ नियराइ ठाइ पग भुकि जल परसत ।
 सुधा-स्वाद-सुख बाद बदत रसना रस सरसत ॥
 ताकी देखादेख सेह सब चाव उचावत ।
 हिचकिचात ललचात नीर नेरै चलि आवत ॥ १० ॥
 सींचि सीस आचम्य रम्य सुखमा सुभ देखत ।
 नंदनवन-आनन्द-अमित-लेखा लघु लेखत ॥

(६५)

कोउ ठमकत गहि ठाम ठठोली करि कोउ ठेलत ।
 कोउ भाजत छल छाइ धाइ कोउ ताहि पछेलत ॥११॥
 कोउ सीतल-जल-छींट छपकि काहू पर छिरकत ।
 कोउ काहू कौं पकरि पीठि-पाछें हटि हिरकत ॥
 कोउ आधार कछु धारि धँसत जानू लगि जलमैं ।
 हरबराइ पर कढ़त थमत नहिं पूर प्रबल मैं ॥१२॥
 कोउ कटि-तट पट वाँधि खेल अटपट अति ठावत ।
 इत तैं उत जल-धार ढार नीचैं है धावत ॥
 यह कौतुक कल अपर सकल बिस्मित-चित चाहत ।
 साधु साधु कहि गहि जुहारि जुरि ताहि सराहत ॥१३॥
 जहँ कोउ मंजुल मोड़ तोड़ गति तरल निवारत ।
 प्रबल-बेग जल फैलि भाँति-सुखमा विस्तारत ॥
 तहाँ जूह के जूह जुरत जल-केलि-उमाहे ।
 बहु विनोद आमोद करत आनँद अवगाहे ॥१४॥
 कोउ नहात कोउ तिरत कोऊ जल-अंतर धावत ।
 रविहिं अर्घ कोउ देत कोऊ हर-हर धुनि लावत ॥
 लै चुभकी कोउ भजत सीत-भय-भीत बिलोकत ।
 कोउ परिहास-बिलास-हेत ताकौं गहि रोकत ॥१५॥
 कोऊ अच्छरिनि छरत छेड़ि छँटि छींट उछारत ।
 तिनकी उभकनि भुकनि भाँकि कहुँ अनत निहारत ॥
 कोउ कहुँ तरु-तर वैठि बिसद यह दृश्य निहारत ।
 मोद- आँस-मुक्कालि प्रकृति-देवी पर वारत ॥१६॥

(६६)

सुमुखि-सुलोचनि-वृंद मंद मुसकात कलोलत ।
 दर-विकसित-अरविंद मनौ बीचिनि-बिच डोलत ॥
 जगर-मगर तन-रतन-जोति जल-तल इमि चमकति ।
 तरनि-सिरन ज्यों परत दिव्य दरपन पर दमकति ॥ १७ ॥
 न्हाइ आइ पुनि तीर चीर सुंदर सब धारत ।
 करि षोडस उपचार आरती उमगि उतारत ॥
 जहँ तहँ मंगल-रंग संग साजे जुवती-गन ।
 नाचत गावत बिबिध बजावत वाद मगन-मन ॥ १८ ॥
 इहिं बिधि सुरसरि सुर-सभाज-सेवित सुख-सानी ।
 भरि विनोद गिरिगोद मोद मंडित उमगानी ॥
 कढ़ति सिमिटि इक ओर घोर धुनि सौं नभ पूरति ।
 ढोंकनि ढेला करति दुरत ढेलनि चकचूरति ॥ १९ ॥
 कहुँ तरल कहुँ मंद कहुँ मध्यम गति धारै ।
 दरति कूल-द्रुम-मूल ढहावति कठिन करारै ॥
 द्वै गिरि सृंगनि-बीच बढ़ति उमड़ति इमि आवति ।
 ज्यों बादर की जोन्ह बिसद बीथिन मैं धावति ॥ २० ॥
 गिरि-बिहार इमि करति हरति दुख-दुरित-समूहनि ।
 देति निरासिनि आस त्रास जम-गन के जूहनि ॥
 कर्न-प्रयाग-विभूषि कर्न-गंगा संग लावति ।
 उत्तर कासी कौ महत्त्व लोकोत्तर ठावति ॥ २१ ॥
 भरि टिहरी-उत्संग संग भृगु-गंग समेटति ।
 देव-प्रयागहिं पूरि अलक-नंदहिं भरि भेंटति ॥

(६७)

दृषोकेस सौं होति सैल-बंधहिं विलगावति ।
 हरिद्वार में आइ छेम छिति-मंडल छावति ॥२२॥
 जेठ मास सित पच्छ स्वच्छ दसमी सुखदाई ।
 तिहि दिन गंग उमंग-भरी भूतल पर आई ॥
 दस-विधि-पातक हरन हेत फहरान फरहरा ।
 तातैं ताकौ पखौ नाम अभिराम दसहरा ॥२३॥
 सुर-धुनि आवत-धूम धाम-धामनि में धाई ।
 चहुँ दिशि तै चलि चपल जुरे बहु लोग लुगाई ॥
 चारहु बरन पुनीत नीति-नाथे गृहवासी ।
 जोगी जंगम परमहंस तापस संन्यासी ॥२४॥
 कोउ नहात कोउ दान करत कोउ ध्यान सुधारत ।
 कोउ स्रद्धा सौं पितर स्राद्ध तरपन करि तारत ॥
 कोऊ वेद वेदांत मथत रस सांत उगाहत ।
 कोऊ चढ्यौ चित-चाव भक्ति के भाव उमाहत ॥२५॥
 कोउ निरूप निर्बान पुलकि सानंद दृग फेरत ।
 कोउ अघाई जल-स्वाद पाइ तोकौं हँसि हेरत ॥
 कोउ अन्हात पछितात नपुनि जग-जनम बिचारत ।
 कोउ कुटीर-हित हुलसि तीर पर ठाम निहारत ॥२६॥
 कबि कोविद कोउ भव्य भाव उर-अंतर खाँचत ।
 निरखि उत्तंग तरंग रंग प्रतिभा कौ जाँचत ॥
 सुमिरि गिरा गननाथ गंग कौं माथ नवावत ।
 रुचिर काव्य-कल-करन-काज चित चाव चढ़ावत ॥२७॥

(६८)

उज्जल-अमल-अनूप - रूप - उपमा बहु सोधत ।
 मुकता-पानिप सरिस स्वच्छ कहि कछु कछु बोधत ॥
 पै तिहिं अचल बिचारि चित्त तासौं बिचलावत ।
 पुनि बरनन कौं बरन बरन आनन नहिं आवत ॥२८॥
 बिपुल वेग बल बिक्रम कौं गुनि गिरि-तरु-गंजन ।
 तिनकी समता-हेत चेत चित परत प्रभंजन ॥
 पै तामैं सुख-परस सरस कौ दरस न देखत ।
 प्रबल बाह में बहीं सकल उपमा तब लेखत ॥२९॥
 सुचि सीतल जल परखि हरषि ही-तल उमगावत ।
 हिम-पट-पटतर प्रगटि नैंकु निज जीव जुड़ावत ॥
 पै तिहिं गुनद न जानि हीन-उपमा उर आनत ।
 आन सीत उपमान परे पाला तर मानत ॥३०॥
 आधि-व्याधि-दुख-दोष दलन-गुन गुनि अभिलाषत ।
 सुकुचि सजीवन-मूरि-स्वरस समता-हित भाषत ॥
 पै ताकैं सुख-स्वाद माहिं संसय मन पारत ।
 तब गुन-गन-निरधार धनंतर कैं सिर धारत ॥३१॥
 मृदुल-माधुरी-मोद कहन-हित हिय हुलसावत ।
 कबहुँ सुकृत-वस सुधा-स्वाद चाख्यौचित आवत ॥
 पै सोउ उपमा माहिं नाहिं पावत कहि तोलन ।
 अकथ गंग-जल-स्वाद देत अधरहि नहिं खोलन ॥३२॥
 हमि गोचर-गुन गुनत उमगि उपमा निरधारत ।
 समता असम बिचारि सकल सुरसरि पर वारत ॥

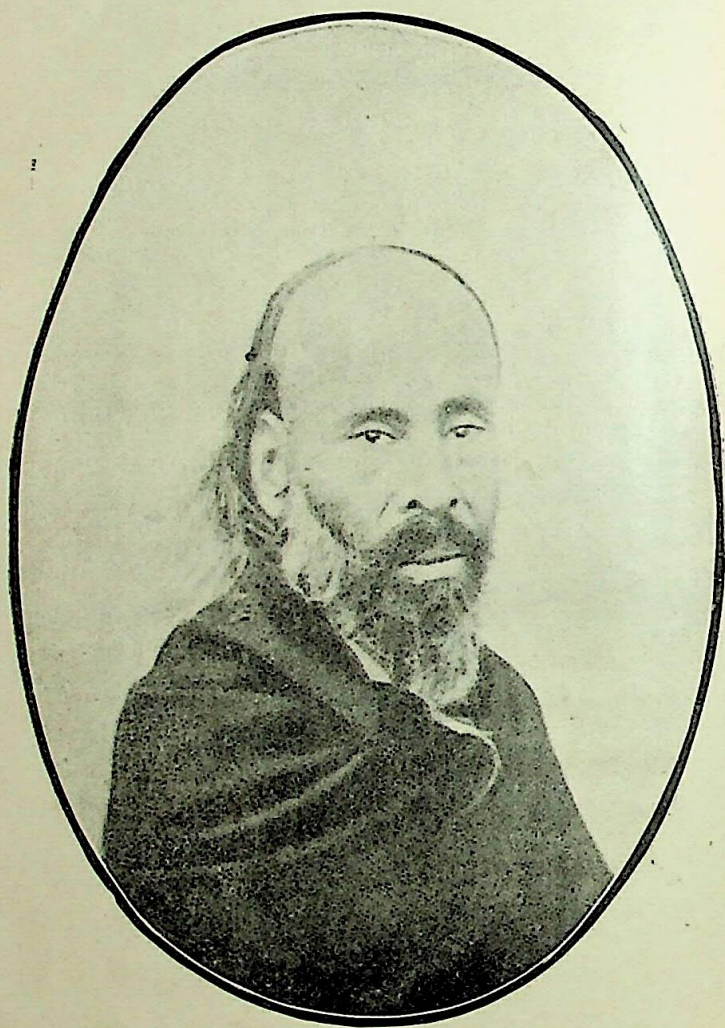
(६६)

रसना रुचिर पखारि धारि प्रतिभा पर पानी ।
 तारन-परम-प्रभाव चहत वरनन वर बानी ॥३३॥
 चित चलाई चढ़ि चाय लोक तीनहुँ परिसोधत ।
 पै न कोऊ उपमान ध्यान मैं आनि प्रबोधत ॥
 तव सारद-पद कंज-मजु-मधुकर-मन लावत ।
 सुमति-स्वच्छ-मकरंद लहत दुख-दंद नसावत ॥३४॥
 सरसरि-सरि-हित विसरि आन उपमान न आनत ।
 कहे सुने धित गुने सकल अनुचित सो जानत ॥
 सुमिर गंग कहि गंग गंग-संगति अभिलाषत ।
 भाषि गंग-सम गंग रंग कविता कौ राखत ॥३५॥
 सुसुखि-वृंद सानंद सुधर तन रतन सजाए ।
 बिहरत बलित-विनोद ललित लहरत जल भाए ॥
 तारनि-सहित अमंद-चंद-प्रतिबिंब मनोहर ।
 मनु बहु बधु धरि फबत फलक-जुत फटिक सिला पर ॥३६॥
 गोरे गात सुहात स्वच्छ कलधौत छरी से ।
 तिन मैं चल चख चमचमात सुंदर सफरी से ॥
 मनु जग-जीतन-काज साज सब सबल बनावत ।
 मीनकेतु निज-केतु-मीन सुभ जल बिचरावत ॥३७॥
 तैरत वूड़त तिरत चलत चुभकी लै जल मैं ।
 चमकति चपला मनहु सरद-धन-विमल-पल्लव मैं ॥
 तरल तरंगनि-बीच लसति बहुरंगनि सारी ।
 मनहु सुधा-सरि-बाढ़ परी सुरपुर फुलवारी ॥३८॥

(१००)

अंग-संग जल-धार धँसत जिनके मुकता-गन ।
 सो करि धरि बर वपुष जाइ बिहरत नंदनवन ॥
 जिन मृग के मद परत छूटि घट-तट तैं पानी ।
 तिनकी करत सचोप चंद-वाहन अगवानी ॥३६॥
 इमि निकसि गंग गिरि-गेह तैं गहौ पंथ महि-ओक कौ ।
 करि हरिद्वार कौ अति सुगत द्वार अगम हरि-लोक कौ ॥३७॥

(गंगावतरण)



पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय

(१०१)

पं० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय “हरिऔध”

पं० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय का जन्म सं० १८२२ में आजमगढ़ जिले के निजामाबाद नामक स्थान में सनाढ्य ब्राह्मण पं० भोलासिंह जी उपाध्याय के यहाँ हुआ था। आपने आरम्भ में निजामाबाद में और तब बनारस के कोन्स कालिज में शिक्षा प्राप्त की थी; पर स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण बीच में कुछ समय के लिए पढ़ना छोड़ दिया था और तब घर पर ही संस्कृत और फारसी का अच्छा अभ्यास किया था। पहले आप निजामाबाद के तहसीली स्कूल में अध्यापक थे और उसी दशा में हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि बाबा सुमेरसिंह जी के सहवास में हिन्दी में कविता करना आरम्भ किया था। आपकी अनुवाद की हुई वेनिस का बाँका, नीति निबन्ध आदि कई अच्छी पुस्तकें हैं। गुलिस्ताँ और गुलजार दविस्ताँ का भी आपने हिन्दी में अनुवाद किया है। इसके अतिरिक्त ठेठ हिन्दी का ठाठ, प्रिय-प्रवास, बोल चाल, चोखे चौपदे आदि आपकी पुस्तकें हिन्दी जगत में बहुत आदर की दृष्टि से देखी जाती हैं। आप बहुत दिनों तक माल विभाग में कानूनगो और गिरदावर कानूनगो आदि के पद पर रह चुके हैं और आज-कल पेन्शन लेकर काशी के हिन्दू विश्वविद्यालय में अवैतनिक

(१०२)

रूप से अध्यापक का काम करते हैं। आपकी कविता बहुत ही सरस, मधुर और ओजपूर्ण होती है। हिन्दी संसार में आप “कवि-सम्राट्” कहे जाते हैं।

(१०३)

व्रज पर इन्द्र का कोप

सरस-सुन्दर सावन मास था ।

घन - घटा नभ थी घिर घूमती ।

बिलसती बहुधा जिसमें रही ।

लुबित्ती उड़ती बक-पंगती ॥ २ ॥

बहरता गिरि - सानु समीप था ।

बरसता छिति छू नव - वारि था ।

घन कभी रवि - अंतिम - अंशु ले ।

वियत में रचता बहु चित्र था ॥ ३ ॥

नव - प्रभा परमोज्ज्वल-लीक सी ।

गति-मती कुटिला-फणिनी-समा ॥

दमकती दुरती घन - अंक थी ।

विपुल केलि-कला-खनि-दामिनी ॥ ४ ॥

विविध-रूप धरे नभ में कभी ।

बिहरता वर - वारिद - व्यूह था ।

बरसता बहु - पावन - वारि था ।

वह कभी सरसा करके रसा ॥ ५ ॥

सलिल-पूरित थी सरसी हुई ।

उमड़ते पड़ते सर-वृन्द थे ॥

कर सु - स्नावित कूल-समस्त को ।

सरित थी स-प्रमोद प्रवाहिता ॥ ६ ॥

(१०४)

अवनि के तल थी अति-शोभिता ।

नवल-कोमल - श्याम - तृणावली ॥

नयन रंजन थी करती महा ।

अनुपमा तरु - राजि हरीतिमा ॥ ७ ॥

हिल, लगे मृदु-मन्द-समीर के ।

सलिल-बिन्दु गिरा सुठि अंक से ॥

महि न थे किस का मन मोहते ।

जल - धुले दल - पादप - पुंज के ॥ ८ ॥

विपुल मोर लिये बहु मोरिनी ।

बिहरते सुख से स-विनोद थे ॥

जटित नीलम पुच्छ-प्रभाव से ।

मणि - मयी करके वन-मेदिनी ॥ ९ ॥

वन प्रमत्त समान पपीहरा ।

कथन था करता मुख पी कहाँ ॥

लख वसंत - विमोहिनी - मंजुता ।

पिक सदा उठता वन कूक था ॥ १० ॥

स - रव पावस - भूप - प्रताप जो ।

सलिल में कहते बहु भेक थे ॥

विपुल भींगुर तो थल में उसे ।

धुन लगा करते नित गान थे ॥ ११ ॥

सुखद पावस के प्रति सर्व की ।

प्रगट सी करती अति प्रीति थी ॥

(१०५)

बसुमती - अनुराग - स्वरूपिणी ।

विलसती बहु वीर - बधूटियाँ ॥१२॥

परम म्लान हुई बहु वेलि को ।

निरख के फलिता अति-पुष्पिता ॥

सकल के उर अंकित थी हुई ।

सुखद शासन की उपकारिता ॥१३॥

विविध आकृति औ फल फूल की ।

उपजती अवलोक सु - वूटियाँ ॥

प्रगट थी महि-मण्डल हो रही ।

प्रियकरी-प्रतिपत्ति - पयोद की ॥१४॥

रस-मयी लख वस्तु-असंख्य को ।

सरसता लख भूतल-व्यापिनी ॥

समझ था पड़ता वरसात में ।

उदक का रस नाम यथार्थ है ॥१५॥

मृतक - प्राय तृण - राजि भी ।

सलिल से फिर जीवित हो गई ॥

फिर सु-जीवन जीवन को मिला ।

बुध न जीवन क्यों उसको कहें ॥१६॥

ब्रज-धरा इक बार इन्हीं दिनों ।

पतित थी दुख-वारिधि में हुई ।

पर उसे अवलम्बन था मिला ।

ब्रज-विभूषण के भुज-पोत का ॥१७॥

(१०६)

दिवस एक प्रभञ्जन का हुआ ।

अति प्रकोप घटा नभ छा गई ॥

बहु-भयाविनी गाढ़ मसी-समा ।

सकल लोक प्रकंपित - कारिणी ॥१८॥

अशनि-पात समान दिगन्त में ।

रव-बिभीषण हो उठने लगा ॥

कर बिदारण वायु पुनः पुनः ।

दमकने नभ दामिनी भी लगी ॥१९॥

मथित चालित ताड़ित हो महा ।

अति प्रचंड प्रभञ्जन - पुंज से ॥

जलद थे दल के दल आ रहे ।

धुमड़ते घिरते ब्रज घेरते ॥२०॥

तरल - तोयधि - तुंग - तरंग लों ।

निबिड़-नीरद थे नभ घूमते ॥

प्रबल हो जिसकी बढ़ती रही ।

असितता घनता रवकारिता ॥२१॥

उपजती उस काल प्रतीति थी ।

प्रलय के घन हैं ब्रज आ घिरे ॥

गगन-मण्डल हैं अथवा जमे ।

जल भरे गिरि-कज्जल कोटिशः ॥२२॥

पतित थी ब्रज-भूतल हो रही ।

प्रति घटी उर-दारिणी दामिनी ॥

(१०७)

असह थी इतनी गुरु गर्जना ।

सह न था सकता पवि-कर्ण भी ॥२३॥

तिमिर की वह थी प्रभुता बढ़ी ।

सब तमोमय था दृग सुभक्ता ॥

चमकता वर-बासर था बना ।

असितता - खनि-भाद्र-कुहू - निशा ॥२४॥ ✓

प्रथम बूँद पड़ी ध्वनि बाँध के ।

फिर लगा पड़ने जल वेग से ॥

अल्प-कालिक सर्व समाँ दिखा ।

वरसता जल मूसल - धार था ॥२५॥

जलप - नाद प्रभंजन - गर्जना ।

रव-महा जल-पात-अजस्र का ॥

कर प्रकम्पित पीवर-प्राण भी ।

भर गया ब्रज-भूतल भूरि था ॥२६॥ ✓

सबल भग्न हुई गुरु डालियाँ ।

गिरधरा करतीं बहु शब्द थीं ॥

पतन होकर पादप-पुंज को ।

क्षण-प्रभा करती शत खंड थी ॥२७॥

सदन थे सब खंडित हो रहे ।

परम संकट में जन-प्राण था ॥

स-बल-विज्जु प्रकोप-प्रमाद में ।

बहु-विचूर्णित पर्वत-शृंग थे ॥२८॥

(१०८)

दिन समस्त गया रजनी हुई ।

फिर हुआ दिन किन्तु न अल्प भी ॥

कम हुई तम - तोम - प्रगाढ़ता ।

न जल-पात रुका न हवा थमी ॥२६॥

सब-जलाशय थे जल से भरे ।

इसलिये निशि-वासर-मध्य ही ॥

जल-मयी व्रज-मेदिनि हो गई ।

सपुरग्राम लगे बहु डूबने ॥३०॥

सर-समग्र हुए सम-ताल के ।

वन गया सर था लघु-गर्त्त भी ॥

बहु-तरंग-मयी गुरु-नादिनी ।

सदृश-वारिधि थी रविजा बनी ॥३१॥

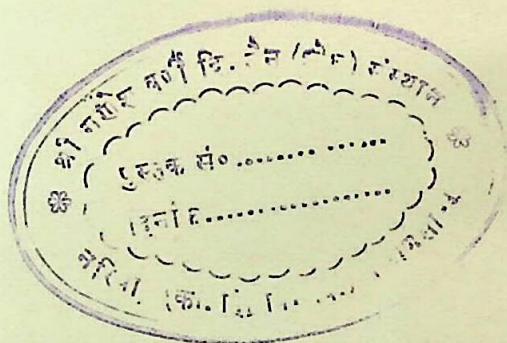
तदपि था पड़ता जल पूर्व लौं ।

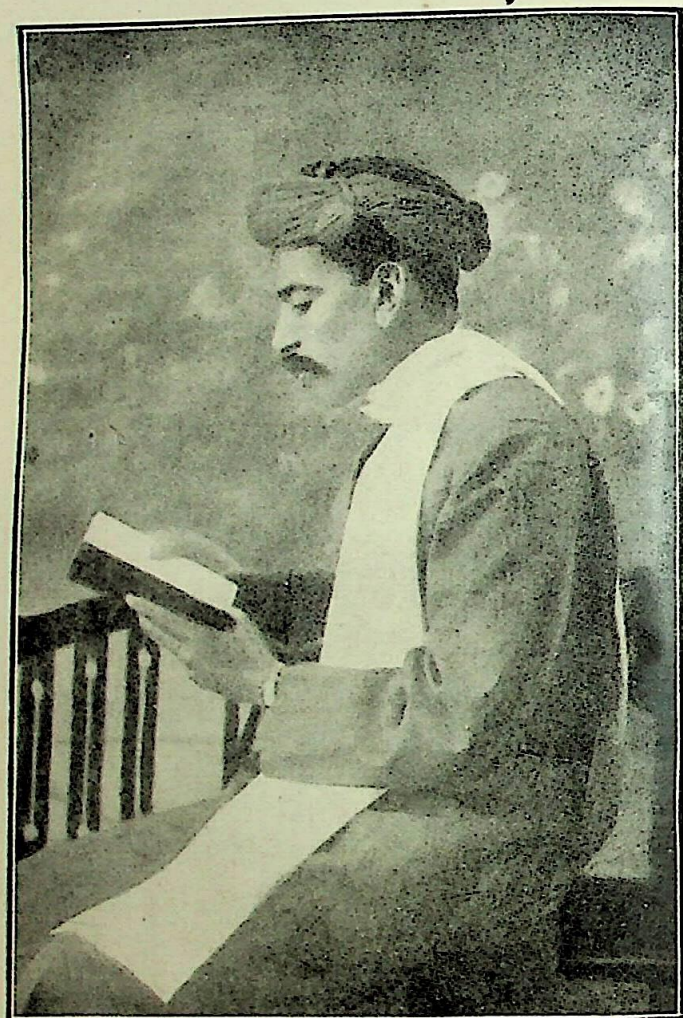
इसलिये अति व्याकुलता बढ़ी ॥

विपुल-लोक गए व्रज-भूष के ।

निकट व्यस्त-समस्त अधीर हो ॥३२॥

(प्रियप्रवास)





बा० मैथिली शरण गुप्त

(१०६)

बाबू मैथिलीशरण गुप्त

बाबू मैथिलीशरण जी गुप्त का जन्म सं० १८४३ में झाँसी जिले के चिरगाँव नामक स्थान में हुआ था। आपके पिता का नाम बाबू रामचरण जी है। आपने, पं० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी की प्रेरणा से हिन्दी में कविता करना आरम्भ किया था और आजकल आप खड़ी बोली के बहुत श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। आपकी कविताओं में राष्ट्रीय भाव अधिक होते हैं। आप की लिखी “भारत-भारती” का युवक समाज में बहुत अधिक आदर है। इसके अतिरिक्त आपने विरहिणी-व्रजांगना, मेघनाद-वध, जयद्रथ-वध, रंग में भंग आदि अनेक अच्छे काव्य लिखे हैं और तिलोत्तमा तथा चन्द्रहास नामक दो नाटक भी आपकी रचना हैं। आजकल आप “साकेत” नामक एक महाकाव्य लिख रहे हैं जो अभी छप रहा है। आशा की जाती है कि वह भी आपकी बहुत ही सुन्दर और उच्चकोटि की रचना होगी। स्कूलों और कालिजों के विद्यार्थियों में आपकी रचनाओं के कारण हिन्दी कविता के प्रति बहुत अधिक अनुराग उत्पन्न हुआ है; और आजकल के अनेक विद्यार्थी कविता करने में आपको अपना आदर्श मान कर चलते हैं।

(११०)

युधिष्ठिर और अर्जुन का मिलन

[१]

इस विध जयद्रथ-वध हुआ पूरा हुआ प्रण पार्थ का,
 अब धर्मराजार्जुन-मिलन है मिलन ज्यों धर्मार्थ का ।
 वर्णन अतः उसका यहीं पर है उचित ही सर्वथा,
 सर्वत्र ही कथनीय है सुख सम्मिलन की शुभ कथा ॥

[२]

सूर्यास्त होना जानकर फिर जब लड़ाई रुक गई,
 निष्प्रभ-पराजित कौरवों की रण-पताका झुक गई ।
 तब नृप युधिष्ठिर के निकट आनन्द से जाते हुए,
 बोले वचन हरि पार्थ से रणभूमि दिखलाते हुए ॥

[३]

“हे वीर ! देखो आज तुम संग्राम में कैसे लड़े,
 मर कर तुम्हारे हाथ से ये शत्रु कितने हैं पड़े !
 ज्यों कञ्ज-वन की दुर्दशा कर डालता गजराज है,
 शोभित तुम्हारे शौर्य से त्यों यह रणस्थल आज है ॥

[४]

“जो तुच्छ अपने सामने थे इन्द्र को भी मानते;
 जो कुछ कहो वस हैं हमीं, जो थे सदा यह जानते ।
 वे शत्रु देखो, आज भू पर सर्वदा को सो रहे,
 हैं मर चुके लाखों तथा घायल हजारों हो रहे ॥

(१११)

[५]

“भुक्तते किसी से थे न जो नृप-मुकुट रत्नों से जड़े,
वे अब शृगालों के पदों की ठोंकरे खाते पड़े ।
पेशी समझ माणिक्य को वह बिहग देखो, ले चला,
पड़ भोग की ही भ्रान्ति में संसार जाता है छला ॥

[६]

“हो मुग्ध शृंग किसी किसी के लोचनों को खींचते,
यह देख कर घायल मनुज अपने दगों को मींचते ।
मानों न अब भी वैरियों का मोह पृथ्वी से हटा,
लिपटे हुए उससे पड़े दिखला रहे अन्तिम छटा !

[७]

“यद्यपि हमारे रथ-हयों को श्रम हुआ सविशेष है,
पर भूल सा उनको गया इस समय सारा क्लेश है ।
पश्वादि भी निज स्वामियों के भाव को पहचानते,
सब निज जनों के दुःख में दुःख, सौख्य में सुख मानते ॥

[८]

“इस ओर देखो, रक्त की यह कीच कैसी मच रही !
है पट रही खण्डित हुए बहु रुण्ड-मुण्डों से मही ।
कर-पद असंख्य कटे पड़े शस्त्रादि फैले हैं तथा,
रङ्गस्थली ही मृत्यु की एकत्र प्रकटी हो यथा ॥

(११२)

[६]

“दुर्योधनानुज हैं पड़े ये भीम के मारे हुए,
 काम्बोज-नृप वे सात्यकी के हाथ से हारे हुए ।
 मृत अच्युतायु श्रुतायु हैं ये, वह अलम्बुष है मरा,
 यह सोमदत्तात्मज पड़ा है, रक्त-रंजित है धरा ॥

[१०]

“यद्यपि निहत होकर पड़े ये वीर अब निःशक्त हैं;
 पर कौरवों का तेज अब भी कर रहे यह व्यक्त हैं ।
 बल-विभव में कुरुराज सचमुच दूसरा सुरराज है,
 पाई विजय प्रारब्ध से ही पार्थ ! तुमने आज है ॥”

[११]

श्रीकृष्ण के प्रति वचन तब बोले धनञ्जय भक्ति से,
 “क्या कार्य्य कर सकता हरे ! मैं आप अपनी शक्ति से ?
 है सब तुम्हारी ही कृपा, हूँ नाम का ही वीर मैं,
 भूला नहीं अब तक तुम्हारा वह विराट शरीर मैं ॥

[१२]

होते तुम्हारे कार्य्य सारे गूढ़ भेदों से भरे,
 हृदयस्थ तुम जो कुछ कराते, मैं मही करता हरे !
 अनुचित-उचित के ज्ञान को कुछ भी नहीं मैं जानता,
 जो प्रेरणा करता विमल मन मैं उसी को मानता ॥”

(११३)

[१३]

हँसते हुए फिर पार्थ बोले अन्य विध वचनावली—

“गोविन्द ! हो तो तुम बड़े ही क्रूर, मायावी, छली ।
रवि को छिपाने के प्रथम मुझको सचेत किया नहीं,
आ जाय मरने की दशा, ऐसी हँसी होती कहीं ?”

[१४]

हँसने लगे तब हरि अहा पूर्णानन्दु सा मुख खिल गया,
हँसना उसी में भीम, अर्जुन, सात्यकी का मिल गया ।
थे मोद और विनोद के सब सरस झोंके खेलते,
भगवान् भक्तों से न जाने खेल क्या क्या खेलते !

[१५]

उन्मत्त विजयोल्लास से सब लोग मत्त गयन्द से,
राजा युधिष्ठिर के निकट पहुँचे बड़े आनन्द से ।
देखा युधिष्ठिर ने उन्हें तब जान ली निज जय तभी,
मुख-चिह्न से ही चित्त की बुध जान लेते हैं सभी ॥

[१६]

तब अर्जुनादिक ने उन्हें बढ़ कर प्रणाम किया वहाँ,
सिर पर उन्होंने हाथ रख सुख दिया और लिया वहाँ ।
सब लोग उनको घेर कर थे उस समय उत्सुक खड़े;
बोले युधिष्ठिर से स्वभू सुन्दर सुमन मानों झड़े ॥

(११४)

[१७]

“हे तात ! जीत हुई तुम्हारे पुण्य-पूर्ण प्रताप से,
रण में जयद्रथ-वध हुआ छूटे धनञ्जय ताप से ।
तुमने इन्हें सौंपा सवेरे था हमारे हाथ में,
सो लीजिए अपनी धरोहर सुख-सुयश के साथ में ॥”

[१८]

सुन कर मधुर घन-शब्द को पाते प्रमोद मयूर ज्यों,
श्रीकृष्ण के सुन वचन सबको सुख हुआ भरपूर त्यों ।
राजा युधिष्ठिर हर्ष से सहसा न कुछ भी कह सके,
थे भक्ति के गुरु भार से मानों वचन उनके थके ॥

[१९]

“साक्षात् चराचरनाथ तुम रखते स्वयं जब हो दया,
आश्चर्य क्या फिर जो जयद्रथ युद्ध में मारा गया ।
तो भी इसे सुन कर हृदय में सुख समाता है नहीं,
साधन-सफलता-सुख-सदृश सुख दृष्टि आता है नहीं ॥

[२०]

“बहु विज्ञ तत्त्वज्ञानियों ने बात यह मुझसे कही-
माधव ! तुम्हें जो इष्ट होता, सर्वदा होता वही ।
अज्ञानता से मूर्ख जन मानव तुम्हें हैं मानते,
ज्ञानी, विवेकी, विज्ञवर विश्वेश तुमको जानते ॥

(११५)

[२१]

“जो कुछ किया तुमने स्वयं हे देवदेव ! हुआ वही,
 जो कुछ करोगे तुम स्वयं आगे वही होगा सही ।
 जो कुछ स्वयं तुम कर रहे हो हो रहा अब है तथा,
 हैं हेतु मात्र सदैव हम, कर्ता तुम्हीं हो सर्वथा ॥

[२२]

हे निर्विकार तथापि तुम हो भक्तवत्सल सर्वदा,
 हो तुम निरीह तथापि अद्भुत सृष्टि रचते हो सदा ।
 आकार-हीन तथापि तुम साकार संतत सिद्ध हो,
 सर्वेश होकर भी सदा तुम प्रेम-वश्य प्रसिद्ध हो ॥

[२३]

“करते तुम्हारा ही मनन सुनि रत तुम्हीं में ऋषि सभी,
 सन्तत तुम्हीं को देखते हैं ध्यान में योगोन्द्र भो ।
 विख्यात वेदों में विभो ! सबके तुम्हीं आराध्य हो,
 कोई न तुमसे है बड़ा तुम एक सबके साध्य हो ॥

[२४]

“पाकर तुम्हें फिर और कुछ पाना न रहता शेष है,
 पाता न जब तक जीव तुमको भटकता सविशेष है ।
 जो जन तुम्हारे पद-कमल के असल मधु को जानते,
 वे मुक्ति की भी कर अनिच्छा तुच्छ उसको मानते ॥

(११६)

[२५]

“हे सच्चिदानन्द प्रभो ! तुम नित्य, सर्व सशक्त हो,
 अनुपम, अगोचर, शुभ, परात्पर, ईश-वर, अव्यक्त हो ।
 तुम धेय, गेय, अजेय हो निज भक्त पर अनुरक्त हो,
 तुम भवविमोचन, पद्मलोचन, पुण्य, पद्मासक्त हो ॥

[२६]

“तुम एक होकर भी अहो ! रखते अनेकों वेश हो,
 आद्यन्त-हीन, अचिन्त्य, अद्भुत, आत्मभू अखिलेश हो ।
 कर्ता तुम्हीं भर्ता तुम्हीं हर्ता तुम्हीं हो सृष्टि के,
 चारो पदार्थ दयानिधे ! फल हैं तुम्हारी दृष्टि के ॥

[२७]

“हे ईश बहु उपकार तुमने सर्वदा हम पर किये,
 उपहार प्रत्युपकार मैं क्या दूँ तुम्हें इसके लिए ?
 है क्या हमारा सृष्टि मैं ? यह सब तुम्हीं से है बनी,
 सन्तत ऋणी हैं हम तुम्हारे तुम हमारे हो धनी ॥

[२८]

“जय दीन-बन्धो, सौख्य-सिन्धो, देव-देव, दयानिधे,—
 जय, जन्म-मृत्यु-विहीन शाश्वत, विश्व-बन्ध, महाविधे ।
 जय पूर्ण, पुरुषोत्तम, जनार्दन, जगन्नाथ, जगत्पते,
 जय जय विभो, अच्युत, हरे, मङ्गलमते, मायापते !”

(११७)

[२६]

कहते हुए यों नृप युधिष्ठिर मुग्ध होकर रुक गए,
 तत्क्षण अचेत-समान फिर प्रभु के पदों में झुक गए
 बढ़कर उन्हें हरि ने हृदय से हर्षयुक्त लगा लिया,
 आनन्द ने सत्प्रेम का मानों शुभालिङ्गन किया ॥

[३०]

वह भक्त से भगवान का मिलना नितान्त पवित्र था,
 प्रत्यक्ष ईश्वर-जीव का सङ्गम अतीव विचित्र था ।
 मानो सुदृढ आकर स्वयं ही शील से थे मिल रहे,
 युग श्याम-गौर सरोज मानों साथ ही थे खिल रहे ॥

[३१]

करने लगे सब लोग तब आनन्द से जय-नाद यों—
 त्रैलोक्य को हों दे रहे निर्भय विजय-संवाद ज्यों ।
 अन्यत्र दुर्लभ है भवन में बात यों उत्कर्ष की,
 सचमुच कहीं समता नहीं है भव्य भारतवर्ष की ॥

[३२]

दुख दुःशलादिक का अभी कहना यदपि अवशिष्ट है,
 पर पाठकों का जी दुखाना अब न हमको इष्ट है ।
 कर बार बार क्षमार्थना होते बिदा अब हम यहीं,
 सुख के समय दुख की कथा अच्छी नहीं लगती कहीं ॥
 (जयद्रथ-वध)

(११८)

बा० जयशंकर प्रसाद

बा० जयशंकर प्रसाद जी का जन्म सं० १८४६ में काशी में हुआ था। आप यहाँ के एक प्रतिष्ठित और सम्पन्न कान्यकुब्ज वैश्य कुल के रत्न हैं। घर पर ही आपने संस्कृत, फारसी और अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। आपकी प्रतिभा, सर्वतो-मुखी है। आप उच्च कोटि के कवि हैं, नाटककार हैं। आपके नाटकों में अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त, जनमेजय और चन्द्रगुप्त आदि बहुत अच्छे हुए हैं और कंकाल नामक उपन्यास भी साहित्य में बहुत उच्च कोटि का गिना जाता है। इसके अतिरिक्त, आपकी कहानियाँ भी गल्प साहित्य में विशेष स्थान रखती हैं। आपको फुटकर कविताओं के चार पाँच संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। कविता में आप अपना उपनाम “प्रसाद” रखते हैं परंतु आपकी कविताएँ प्रायः आपके नामानुरूप प्रसाद गुण-पूर्ण नहीं होती हैं। आपके भाव तथा विचार बहुत ही उच्च कोटि के होते हैं। कदाचित् उन्हीं के अनुरूप बनने के प्रयत्न में आपकी भाषा भी कुछ जटिल हो जाती है, जिसका समझना साधारण प्रयास का काम नहीं है। हाँ, उनकी जो कविता इस संग्रह में दी जा रही है वह प्रसाद गुण से ओत-प्रोत है और आसानी से समझ में आ जाती है। हिन्दी के मौलिक लेखकों में आपका स्थान बहुत ऊँचा है।



बा० जयशंकर प्रसाद

(११६)

चित्रकूट

३

उदित कुसुदिनी-नाथ हुप प्राची में ऐसे ।

सुधा-कलश रत्नाकर से उठता हो जैसे ॥

धीरे-धीरे उठे नई आशा से मन में ।

क्रोड़ाकरने लगे स्वच्छ स्वच्छन्द गगन में ॥

चित्रकूट भी चित्र-लिखा-सा देख रहा था ।

मन्दाकिनी-तरङ्ग उसी से खेल रहा था ॥

स्फटिक-शिला-आसीन राम-वैदेही ऐसे ।

निर्मल सर में नील कमल नलिनी हो जैसे ॥

निज प्रियतम के सङ्ग सुखी थी कानन में भी ।

प्रेम भरा था वैदेही के आनन में भी ॥

मृगशावक के साथ मृगी भी देख रही थी ।

सरल विलोकन जनकसुता से सीख रही थी ॥

निर्वासित थे राम, राज्य था कानन में भी ।

सच ही हैं श्रीमान भोगते सुख वन में भी ॥

चन्द्रातप था व्योम, तारका-रत्न जड़े थे ।

स्वच्छ दीप था सोम, प्रजातारु-पुञ्ज खड़े थे ॥

(१२०)

शान्त नदी का स्रोत बिछा था अति सुखकारी ।
 कमल-कली का नृत्य हो रहा था मनहारो ॥
 बोल उठा जो हंस देखकर कमल-कली को ।
 तुरत रोकना पड़ा गूँजकर चतुर अली को ॥
 हिली आम की डाल, चला ज्यों नवल हिंडोला ।
 'आह कौन है' पञ्चम स्वर से कोकिल बोला ॥
 मलयानिल प्रहरी-सा फिरता था उस वन में ।
 शान्ति शान्त हो बैठी थी कामद-कानन में ॥
 राघव बोले देख जानकी के आनन को—
 'स्वर्गङ्गा का कमल मिला कैसे कानन को ?'
 'नोल मधुप को देख, वहीं उस कञ्ज-कली ने ।
 स्वयं आगमन किया'—कहा यह जनक-लली ने ॥
 बोले राघव—'प्रिये ! भयावह-से इस वन में ।
 शङ्का होती नहीं तुम्हारे कोमल मन में ?'
 कहा जानकी ने हँसकर—'उसको है क्या डर ?
 जिसके पास प्रवीण धनुर्धर ऐसा सहचर' ॥
 कहा राम ने—'अहा ! महल, मन्दिर मनभावन ।
 स्मरण न होते तुम्हें कहो क्या वे अति पावन ॥
 रहते थे भङ्गारपूर्ण जो तव नूपुर से ।
 सुरभिपूर्ण पुर होता था जिस अन्तःपुर से ॥'

(१२१)

जनकसुताने कहा—‘नाथ ! यह क्या कहते हैं ।

नारी के सुख सभी साथ पति के रहते हैं ॥

कहो उसे प्रियप्राण ! अभाव रहा फिर किसका ?

विभव चरण का रेणु तुम्हारा ही है जिसका ॥’

२

मधुर-मधुर आलाप करते ही पिय-गोद में ।

मिटा सकल सन्ताप, वैदेही सोने लगी ॥

पुलकित-तनु थे राम, देख जानकी की दशा ।

सुमन-स्पर्श अभिराम, सुख देता किसको नहीं ॥

नील गगन सम राम, अहा अङ्ग में चन्द्रमुख ।

अनुपम शोभाधाम आभूषण थे तारका ॥

खुले हुए कच-भार बिखर गये थे वदन पर ।

जैसे श्याम सिवार आसपास हो कमल के ॥

कैसा सुन्दर दृश्य ! लता-पत्र थे हिल रहे ।

जैसे प्रकृति अदृश्य, बहु कर से पंखा भले ॥

निर्मिमेष दृग नील देख रहे थे राम के ।

जैसे प्रहरी भील खड़े जानकी-वदन के ॥

नैसर्गिक सौन्दर्य देख जानकी-अङ्ग का ।

नृपचूड़ामणिवर्य राम मुग्ध से हो रहे ॥

‘कुछ कहना है आर्य’ बोले लक्ष्मण दूर से ।

‘ऐसा ही है कार्य, इससे देता कष्ट हूँ ॥’

(१२२)

राघव ने सस्नेह कहा—‘कहो, क्या बात है ?

कानन हो या गेह, लक्ष्मण तुम चिरबन्धु हो ॥

फिर कैसा संकोच ? आओ, बैठो पास में ।

करो न कुछ भी सोच, निर्भय होकर तुम कहो ॥’

पाकर यह सम्मान, लक्ष्मण ने सविनय कहा—

“आर्य ! आपका मान, यश सदैव बढ़ता रहे ॥

फिरता हूँ मैं नित्य, इस कानन में ध्यान से ।

परिचय जिसमें सत्य मिले मुझे इस स्थान का ॥

अभी टहलकर दूर, ज्योंहीं मैं लौटा यहाँ ।

एक विकटमुख क्रूर भील मिला उस राह में ॥

मेरा आना जान, उठा सजग हो भील वह ।

मैंने शर सन्धान किया जानकर शत्रु को ॥

किन्तु, क्षमा प्रति बार माँगा उसने नम्र हो ।

रुका हमारा वार, पूछा फिर—‘तुम कौन हो’ ?

उसने फिर कर जोड़ कहा—‘दास हूँ आपका ।

चरण-कमल को छोड़, और कहाँ मुझको शरण’ ?

निषादपति का दूत मैं प्रेरित आया यहाँ ।

कहना है करतूत भरत भूमिपति का प्रभो !

सजी सैन्य चतुरङ्ग बलशाली ले साथ में ।

किये और ही ढङ्ग, आते हैं इस ओर को ॥’

(१२३)

पुलकित होकर राम बोले लक्ष्मण वीर से—

‘और नहीं कुछ काम, मिलने आते हैं भरत ॥’

३

सोते अभी खग-वृन्द थे निज नीड़ में आराम से ।

ऊषा अभी निकली नहीं थी रविकरोज्ज्वल-दाम से ॥

केवल टहनियाँ उच्च तरुगण की कभी हिलती रहीं ।

मलयज पवन से विवश आपस में कभी मिलती रहीं ॥

ऊँचे शिखर, मैदान, पर्णकुटीर, सब निस्तब्ध थे ।

सब सो रहे, जैसे अभागों के दुखद प्रारब्ध थे ॥

भरने पहाड़ी चल रहे थे मधुर मीठी चाल से ।

उड़ते नहीं जलकण अभी थे उपलखण्ड विशाल से ॥

आनन्द के आँसू भरे थे, गगन में तारावली ।

थी देखती रजनी विदा होते निशाकर को भली ॥

कलियाँ कुसुम की थीं लजाई प्रथम स्पर्श-शरीर से ।

चिटकीं बहुत जब छेड़छाड़ हुआ समीर अधीर से ॥

थी शान्तिदेवी-सी खड़ी उस ब्रह्मवेला में भली ।

मन्दाकिनी शुभ तरल-जल के बीच मिथिलाधिप-लली ॥

रजलिप्त स्वच्छ शरीर होता था सरोज-पराग से ।

जल भी रँगा था श्यामलोज्ज्वल राम के अनुराग से ॥

जल-विन्दु थे जो बदन पर, उस इन्दु मन्द प्रकाश में ।

द्रवचन्द्रकान्त मनोज्ञ मणि के बने विमल विलास में ॥

(१२४)

आकण्ठ-मज्जित जानकी चन्द्राभमय जल में खड़ी ।

सचमुच बदन-विधु था, शरद-घन-बीच जिसकी गति अड़ी ॥
जल की लहरियाँ घेरतीं वन मेघमाला-सी उसे ।

हो पवन-ताड़ित इन्दु कर मलता निरख करके जिसे ॥
कर स्नान पर्णकुटीर को अपने सिधारी जानकी ।

तब कञ्जलोचन के जगाने की क्रिया अनुमान को ॥
रविकर-सदृश हेमाभ उँगली से चरण-सरसिज छुआ ।

उन्निद्र होने-से लगे दृगकञ्ज, कम्प सहज हुआ ॥
उस नित्यपरिचित स्पर्श से राघव सजग हो जग गये ।

होकर निरालस नित्यकृत्य सुधारने में लग गये ॥
फलमूल लेने के लिये तब जानकी तरु-पुञ्ज में ।

सञ्चारिणी ललिता लता-सी हो गई घन-कुञ्ज में ॥
अपने सुकृत-फल के समान मिले उन्हें फल ढेर-से ।

मीठे, नवीन, सुस्वादु, जो संचित रहे थे देर से ॥
हो स्वस्थ प्रातःकर्म से जब राम पर्णकुटीर में ।

आये टहल मन्दाकिनो-तट से प्रभात-समीर में ॥
देखा कुशासन है बिछा, फल और जल प्रस्तुत वहाँ ।

हैं जागकी भी पास, पर लक्ष्मण न दिखलाते वहाँ ॥

४

सीता ने तब खोज लिया सौमित्र को ।

तरु-समीप में, वीर-विचित्र-चरित्र को ॥

(१२५)

‘लक्ष्मण ! आओ वत्स, कहाँ तुम चढ़ रहे ।’

प्रेम-भरे ये वचन जानकी ने कहे ॥

‘आर्ये’ होगा स्वादु मधुर फल यह पका ।

देखो, अपने सौरभ से है यह छुका ॥’

लक्ष्मण ने यह कहा और अति वेग से ।

चले वृक्ष की ओर, चढ़े उद्वेग से ॥

ऊँचा था तरुराज, सघन वह था हरा ।

फल-फूलों से डाल-पात से था भरा ॥

लक्ष्मण तुरत अदृश्य उसी में हो गये ।

जलद-जाल के बीच विमल विधु-से हुए ॥

टहल रहे थे राम उसी ही स्थान में ।

कोलाहल रव पड़ा सुनाई कान में ॥

चकित हुए थे राम, बात न समझ पड़ी ।

लक्ष्मण की पुकार तबतक यह सुन पड़ी—

‘आर्य’ आर्य बस धनुष मुझे दे दीजिये ।

कुछ भी देने में विलम्ब मत कीजिये ॥’

कहा राम ने—‘वत्स, कहो क्या बात है ?

सुनै भला कुछ, कैसा यह उत्पात है ?’

लक्ष्मण ने फिर कहा—‘देर मत कीजिये ।

आया है वह दुष्ट, मारने दीजिये ॥’

(१२६)

‘कौन ? कहो तो स्पष्ट, कौन अरि है यहाँ ?’

कहा राम ने—‘सुनें भला, वह है कहाँ ?’

‘दुष्ट भरत आता ले सेना संग में ।

रँगा हुआ है क्रूर राजमद—रंग में ॥

उसका हृद्गत भाव और ही आर्य है ।

आता करने को कुछ कुत्सित कार्य है ॥’

सुनकर लक्ष्मण के यह वाक्य प्रमाद से—

भरे, हँसे तब राम मलीन विषाद से ॥

कहा—‘उतर आवो लक्ष्मण उस वृक्ष से ।

हटो शीघ्र उस भ्रम-पूरित विषवृक्ष से ॥’

लक्ष्मण नीचे आकर बोले रोष से—

‘वनवासी हैं हुए आप निज दोष से ॥’

भरत इसी क्षण पहुँचे, दौड़ समीप में ।

बढ़ा प्रकाश सु भ्रातृस्नेह के दीप में ॥

चरण-स्पर्श के लिये भरत-भुज ज्यों बढ़े ।

राम-बाहु गल-बीच पड़े, सुख से मढ़े ॥

अहा ! विमल स्वर्गीय भाव फिर आ गया ।

नील कमल मकरन्द-विन्दु से छा गया ॥

(१२७)

पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी का जन्म सं० १८५५ में बंगाल के मेदिनीपुर जिले की महिषादल नाम की रियासत में हुआ था, जहाँ आपके पिता पं० रामसहाय त्रिपाठी राज्य में काम करते थे। आपने अंग्रेजी में मैट्रिक तक की शिक्षा पाई है। बंगाल में ही जन्म होने और बाल्यावस्था बीतने के कारण आपको बँगला भाषा का बहुत अच्छा अभ्यास है; और आरंभ में कुछ दिनों तक आप बँगला में कविता भी करते थे; पर आगे चलकर आप हिन्दी में ही कविता करने लगे। कविता भी आपने बिलकुल निराले ढंग की शुरू की; और शायद इसी लिए आपने अपना नाम भी “निराला” ही रखा। आपकी कविता उसी ढंग की होती है, जिसे अंग्रेजी में “ब्लैंक वर्स” (Blank Verse) कहते हैं और जिसके छन्दों में पिंगल आदि का कोई नियम नहीं होता। आपकी कविता की दूसरी विशेषता यह है कि वह उस शाखा की होती है जिसे आज कल लोग “छायावाद” कहने लगे हैं। पहले साप्ताहिक-पत्र “मतवाला” में आपकी कविता प्रायः निकला करती थी; और अब दूसरे अनेक सामयिक-पत्रों में भी निकलती है, जिनमें से कुछ फुटकर कविताओं का संग्रह “अनामिका” नाम से प्रकाशित हुआ है।

(१२८)

यमुने !

किसकी स्वप्नों सी आँखों की पल्लव-छाया में अम्लान
 यौवन की माया सा आया मोहन का सम्मोहन ध्यान ?
 गन्धलुब्ध किन अलिबालों के मुग्ध हृदय का मृदु गुञ्जार
 तेरे दृग-कुसुमों को सुषमा जाँच रहा है वारम्बार ?
 यमुने, तेरी इन लहरों में किन अधरों की आकुल तान
 पथिक प्रिया सी जगा रही है उस अतीत के नोरव गान ?
 सजनि ! कहाँ अब वह वंशीवट ? कहाँ गये नट-नागर श्याम ?
 चल-चरणों का व्याकुल पनघट कहाँ, कहाँ वह केलि-ललाम ?
 कभी यहाँ देखे थे जिनके श्याम-विरह से तप्त शरीर,
 किस विनोद की तृषित गोद में आज पोंछती वे दृग-नीर ?
 रंजित सहज सरल चितवन में उत्कण्ठित सखियों का प्यार
 सखि आँसू सा दुलक गया वह विरह-विधुर उर का उद्गार ?
 तू किस विस्मृति की वीणा से उठ उठकर कातर झनकार
 उत्सुकता से उकता उकता खोल रही श्रुति के दृढ़ द्वार ?
 अलस प्रेयसी सी स्वप्नों में प्रिय की शिथिल सेज के पास,
 लघु लहरों के मधुर स्वरों में किस अतीत का गूढ़ विलास ?
 उर-पुर में नूपुर की ध्वनि सी मादकता की तरल तरङ्ग
 विचर रही है मौन पवन में यमुने ! किस अतीत के संग ?
 किस अतीत का दुर्जय जीवन अपनी अलकों में सुकुमार
 कनक-कुसुम सा गुँथा तू ने यमुने, किसका रूप अपार ?
 निर्निमेष नयनों में छाया किस विस्मृत-मदिरा का राग ?—
 अब तक पलकों के पुलकों में छलक रहा है विपुल सुहाग !

(१२६)

मुक्त हृदय के सिंहासन पर किस अतीत के वे सम्राट
 दीप रहे जिनके मस्तक पर रवि-शशि-तारे-विश्व विराट् ?
 निखिल विश्व की जिज्ञासा सी आशा की तू झलक अमन्द
 अन्तःपुर की निज शय्या पर रचती मृदु छन्दों के वन्द,
 किस अतीत के सुहृद-करों में अर्पित करती है निज ध्यान;
 ताल ताल के द्रुत कम्पन में बहते हैं ये किसके गान ?
 विहगों की निद्रा से नीरव कानन के संगीत अपार
 किस अतीत के स्वप्न-लोक में करते हैं मृदु-पद-संचार ?
 मुग्धा के लज्जित पलकों पर तू यौवन की छवि अज्ञात
 आँखमिचौनी खेल रही है किस अतीत-शिशुता के साथ ?
 किस अतीत-सागर-संगम को बहते खोल हृदय के द्वार
 वोहित के हित सरल अनिल से नयन-सलिल से स्रोत अपार ?
 उस सलज्ज ज्योत्स्ना-सुहाग की फेनिल शय्या पर सुकुमार
 उत्सुक, किस अभिसार-निशा में, गई कौन स्वप्निल पर मार ?
 उठ उठकर अतीत विस्मृति से किसकी स्मृति यह किसका प्यार
 तेरे श्याम कपोलों में खिल कर जाता है चकित विहार ?
 जीवन की इस सरस सुरा में सखि है किसका मादक राग
 फूट पड़ा तेरी ममता में जिसकी समता का अनुराग ?
 किन नियमों के निर्मम बन्धन जग की संसृति का परिहास
 कर, बन जाते आकुल क्रन्दन ? सखि, वे किसके निर्दय पास ?

(१३०)

सन्तप्त

अपने अतीत का ध्यान
करता मैं गाता था गाने भूले, कुछ प्रियमाण;
एकाएक क्षोभ का अन्तर मैं होते संचार
उठी व्यथित उँगली से कातर एक तीव्र झनकार,
विकल वीणा के टूटे तार !

मेरा आकुल-कन्दन—

व्याकुल वह स्वर-सरित-हिलोर

वायु में भरती करुण मरोर,

बढ़ती है तेरी ओर ।

मेरे ही कन्दन से उमड़ रहा यह तेरा सागर—
सदा अधीर,

मेरे ही बन्धन से निश्चल

नन्दन-कुसुम-सुरभि-मधु-मदिर समीर;

मेरे गीतों का छाया अवसाद,

देखा जहाँ वहीं है करुणा—

घोर विषाद ।

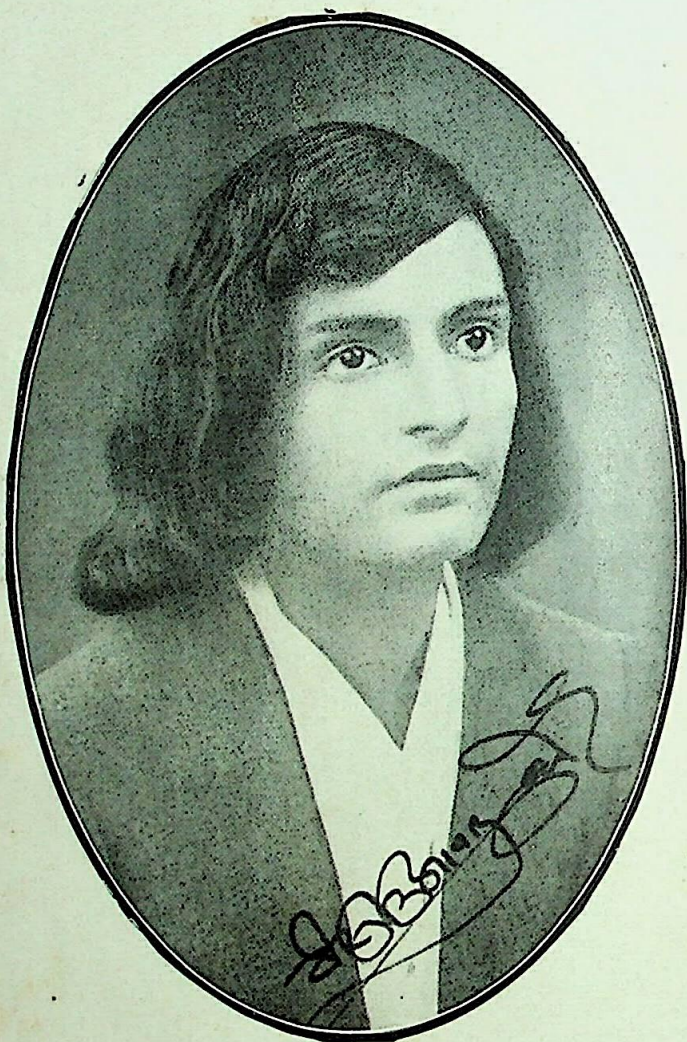
सो मेरे !—मेरे उन्मोचन-बन्धन !

ओ मेरे !—ओ मेरे कन्दन-वन्दन !

ओ मेरे अभिनन्दन !

ये सन्तप्त लिप्त कब होंगे गीत

हृत्तल में तब जैसे शीतल चन्दन ?



पं० सुमित्रानंदन पंत

(१३१)

पं० सुमित्रानन्दन पन्त

पं० सुमित्रानन्दन पन्त अलमोड़े के रहनेवाले हैं और आपका जन्म सं० १८५८ में वहीं हुआ था। आपके पिता पं० गंगादत्त बहुत ही धर्मशील थे। आपकी अधिकांश शिक्षा प्रयाग में हुई थी। वहीं आपने एफ० ए० तक अध्ययन किया था। आपने कविता के क्षेत्र में एक नये ही युग का सूत्रपात किया है। आपकी कविता के स्वाभाविक सौकुमार्य और शब्द-लालित्य ने खड़ी बोली के सिर से रुढ़ता के कलंक को मिटा दिया है। आपने अँगरेजी की भाव प्रकाशन-शैली ग्रहण की है और अँगरेजी के कई मुहावरों को भी अपनाया है। आपकी रचनाएँ हिंदी के विशाल और दिव्य भविष्य की आशा दिलाती हैं। आपकी कृतियों में उच्छ्वास, पल्लव, वीणा और ग्रंथि बहुत प्रसिद्ध हैं और आपकी प्रसिद्धि का बहुत कुछ कारण हुई हैं।

(१३२)

विहग के प्रति

विजन-वन के ओ विहग-कुमार !
 आज घर-घर रे तेरे गान;
 मधुर-मुखरित हो उठा अपार
 जीर्ण-जग का विषण्ण-उद्यान !

सहज चुन-चुन लघु तृण, खर, पात,
 नीड़ रच-रच निशि-दिन सायास,
 छा दिये तूने, शिल्पि-सुजात !
 जगत की डाल-डाल में वास !

मुक्त-पंखों में उड़ दिन-रात,
 सहज स्पन्दित कर जग के प्राण,
 शून्य-नभ में भर दी अज्ञात
 मधुर-जीवन की मादक-तान ।

सुप्त-जग में गा स्वप्निल-गान
 स्वर्ण से भर दी प्रथम-प्रभात,
 मञ्जु-गुंजित हो उठा अजान
 फुल्ल जग-जीवन का जलजात ।

श्रान्त, सोती जब 'संध्या-वात,
 विश्व-पादप निश्चल, निष्प्राण,—
 जगाता तू पुलकित कर पात
 जगत-जीवन का शतमुख-गान ।

(१३३)

छोड़ निर्जन का निभृत निवास,
नीड़ में बँध जग के सानन्द,
भर दिए कलरव से दिशि-आस
गृहों में कुसुमित, मुदित, अमन्द !

रिक्त होते जब-जब तरु-वास
रूप धर तू नव नव तत्काल,
नित्य-नादित रखता सोल्लास
विश्व के अक्षय-वट की डाल ।

सुग्ध-रोआँ में मेरे, प्राण !
बना पुलकों के सुख का नीड़;
फूँकता तू प्राणों में गान
हृदय मेरा तेरा आक्रीड़ ।

दूर वन के ओ राजकुमार !
अखिल उर-उर में तेरे गान,
मधुर इन गीतों से, सुकुमार !
अमर मेरे जीवन 'औ' प्राण ।

मौन निमन्त्रण

स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार
चकित रहता शिशु-सा नादान,
विश्व की पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान;

(१३४)

न जाने, नक्षत्रों से कौन
निमन्त्रण देता मुझको मौन !

सघन मेघों का भीमाकाश
गरजता है जब तमसाकार;
दीर्घ भरता समीर निश्वास,
प्रखर भरती जब पावस-धार;

न जाने, तमक तड़ित में कौन
मुझे इङ्कित करता तब मौन !

देख बसुधा का यौवन-भार
गूँज उठता है जब मधुमास,
विधुर उर के-से मृदु उद्गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास;

न जाने, सौरभ के मिस्र कौन
सँदेसा मुझे भेजता मौन !

क्षुब्ध जल-शिखरों को जब वात
सिन्धु में मथ कर फेनाकार,
बुलबुलों का व्याकुल संसार
बना, विथुरा देता अज्ञात;

उठा तब लहरों से कर कौन
न जाने, मुझे बुलाता मौन !

स्वर्ण, सुख, श्री, सौरभ में भोर
विश्व को देती है जब बोर
विहग-कुल की कल-कण-हलोर
मिला देती भू-नभ के छोर;

न जाने, अलस-पलक-दल कौन
खिला देता तब मेरे मौन !

(१३५)

तुमुल तम में जब एकाकार
 ऊँघता एक साथ संसार,
 मोरु भींगुर कुल को भनकार
 कँपा देती तन्द्रा के तार,

न जाने, खद्योतों से कौन
 मुझे तब पथ दिखलाता मौन !

कनक-छाया में, जब कि सकाल
 खोलती कलिका उर के द्वार,
 सुरभि-पीड़ित मधुपों के बाल
 पिघल, वन जाते हैं गुञ्जार,

न जाने, दुलक ओस में कौन
 खींच लेता मेरे दृग मौन !

विद्या काय्यों का गुरुतर भार
 दिवस को दे सुवर्ण अवसान,
 शून्य शय्या में, श्रमित अपार,
 जुड़ाता मैं जब आकुल प्राण,

न जाने, मुझे स्वप्न में कौन
 फिराता छाया-जग में मौन !

न जाने कौन, अये द्युतिमान !
 जान मुझको अवोध, अज्ञान,
 सुभाते हो तुम पथ अनजान,
 फूँक देते छिद्रों में गान;

अहे सुख-दुख के सहचर मौन,
 नहीं कह सकता तुम हो कौन !

(१३६)

बादल

सुरपतिके हम ही हैं अनुचर,
जगत्प्राण के भी सहचर;
मेघदूत की सजल कल्पना,
चातक के चिर-जीवनधर;

मुग्ध शिखी के नृत्य मनोहर,
सुभग स्वाति के मुक्ताकर
विहग-वर्ग के गर्भ-विधायक,
कृषक-बालिका के जलधर।

जलाशयों में कमलदलों सा
हमें खिलाता नित दिनकर,
पर बालक सा वायु सकल-दल
बिखरा देता, चुन सत्वर;

लघु-लहरों के चल-पलनों में
हमें भुलाता जब सागर,
वहो चील सा झपट, बाँह गह,
हमको ले जाता ऊपर।

विपुल कल्पना से त्रिभुवन की
विविध रूप धर, भर नभ-अंक
हम फिर क्रीड़ा-कौतुक करते
छा अनंत-उर में निःशंक;

कभी चौकड़ी भरते मृग से
भूपर चरण नहीं धरते,

(१३७)

मत्त मतंगज कभी भूमते
सजग-शशक नभको चरते;

कभी अचानक भूतों का सा
प्रकटा विकट महा-आकार
कड़क, कड़क, जब हँसते हम सब
थर्रा उठता है संसार ।

फिर परियों के वच्चों से हम
सुभग सीप के पंख पसार
समुद्र पैरते शुचि-ज्योत्स्ना में
पकड़ इंद्र के कर सुकुमार ।

अनिल-विलोड़ित गगन-सिंधुमें
प्रलय-वाढ़ से चारों ओर
उमड़ उमड़ हम लहराते हैं
बरसा उपल, तिमिर घनघोर ।

दमयंती सी कुमुद-कला के
रजत-करोँ में फिर अभिराम
स्वर्ण-हंस से हम मृदु-ध्वनिकर ।
कहते प्रिय-संदेश ललाम ।

व्योम-विपिन में जब वसंत सा
खिलता नव-पल्लवित प्रभात
बहते हम तब अनिल-स्रोत में
गिर तमाल-तमके से पात ;

(१३८)

उहयाचल से बालहंस फिर
उड़ता अंबर में अवदात
फैल स्वर्ण-पंखों से हम भी
करते द्रुत मारुत से बात ।

धीरे-धीरे संशय से उठ,
बढ़ अपयश से शीघ्र अछोर,
नभ के उर में उमड़ मोह से
फैल लालसा से निशि भोर;

इंद्रचाप सी व्योम-भृकुटि पर
लटक मौन-चिंता से घोर
घोष-भरे विष्व-भय से हम
छा जाते द्रुत चारों ओर ।

पर्वत से लघु धूलि, धूलि से
पर्वत बन, पल में, साकार-
कालचक्र से चढ़ते, गिरते,
पल में जलधर फिर जल-धार;

कभी हवा में महल बनाकर,
सेतु बाँध कर कभी अपार,
हम विलीन हो जाते सहसा
विभव-भूति हो से निस्सार ।

(१३६)

ठाकुर गोपालशरण सिंह

आपका जन्म-स्थान रीवाँ राज्य का नई गढ़ी नामक ताल्लुका है जहाँ के आप इलाकेदार हैं। आपका जन्म सं० १९४८ में हुआ था। आपने स्कूल में केवल मैट्रिक तक की शिक्षा पाई थी; पर उसके बाद स्वयं अध्ययन करके बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त किया है। आप बाल्यावस्था में ही कविता करने लगे थे; और आजकल आप खड़ी बोली के बहुत अच्छे कवि माने जाते हैं। आपकी कविता बहुत ही सरस, हृदयग्राहिणी और प्रभावपूर्ण होती है। आपकी अधिकांश कविताएँ “सरस्वती” में प्रकाशित हुई हैं, और हाल में “माधवी” नाम से उनका एक संग्रह भी प्रकाशित हुआ है। आप कभी कभी सामाजिक आदि विषयों पर गद्य में बहुत सुन्दर लेख भी लिखते हैं। आप अपने इलाके का प्रबन्ध भी बहुत उदारता तथा दयालुता-पूर्वक करते हैं और अपनी प्रजा के दुःख दूर करने में सदा तत्पर रहते हैं।

(१४०)

ब्रज-वर्णन

आते जो यहाँ हैं ब्रज-भूमि की छटा वे देख,
 नेक न अघाते होते मोद-मद-माते हैं ।
 जिस ओर जाते उस ओर मन-भाते दृश्य,
 लोचन लुभाते और चित्त को चुराते हैं ।
 पल भर अपने को वे भूल जाते सदा,
 सुखद अतीत-सुध-सिंधु में समाते हैं ।
 जान पड़ता है उन्हें आज भी कन्हैया यहाँ,
 मैया मैया टेरते हैं गैया को चराते हैं ॥ १ ॥
 करते निवास छवि-धाम घनश्याम-भृंग,
 उर कलियों में सदा ब्रज-नर-नारी की ।
 कण कण में है यहाँ व्याप्त दृग-सुखकारी,
 मंजु मनोहारी मूर्ति मंजुल मुरारी की ।
 किसको नहीं है सुध आती अनायास यहाँ,
 गोवर्धन देखकर गोवर्धन-धारी की ?
 न्यारी तीन लोक से है प्यारी जन्म-भूमि यही,
 जन-मन-हारी वृंदा-विपिन-विहारी की ॥ २ ॥
 अंकित ब्रजेश की छटा है सब ठौर यहाँ,
 लता-दुम-वल्लियों में और फूल फूल में ।
 भूमि ही यहाँ की सब काल बतला-सी रही,
 ग्वाल-वाल संग वह लोटे इस धूल में ।

(१४१)

कल कल रूप में है वंशो-रव गूँज रहा,
 जाके सुनो कलित कलिंदजा के कूल में ।
 ग्राम ग्राम धाम धाम में हैं घनश्याम यहाँ,
 किंतु वे छिपे हैं मंजुमानस टुकूल में ॥ ३ ॥
 गूँज रही आज भी सभी के श्रवणों में यहाँ,
 रुचिर रसाल ध्वनि नूपुरों के जाल की ।
 भूल सकता है कोई ब्रज में कभी क्या भला,
 निपट निराली छुटा चारु वनमाल की ।
 समता मराल ने न नेक कभी कर पाई,
 मंजु मंद मंद नंद-नंदन की चाल की ।
 रहती दृगों में छाई उर में समाई सदा,
 छवि मनभाई बाल मदन-गोपाल की ॥ ४ ॥
 अब भी मुकुंद रहते हैं ब्रज-भूमि ही में,
 देखते यहाँ के दृश्य दृग फेर फेर के ।
 छिपे उर-कुंज में हैं वृंदावन-वासियों के,
 थकते वृथा ही लोग उन्हें हेर हेर के ।
 चित्त-वृत्तियाँ हैं सब गोपियाँ उन्हीं की बनी,
 रहती उन्हीं के आस पास घेर घेर के ।
 आठो याम सब लोग लेते हैं उन्हीं का नाम,
 मानो हैं बुलाते "श्याम श्याम" टेर टेर के ॥ ५ ॥
 उमड़ रहा है प्रेम-पारावार मानस में,
 ब्रज-वनिताएँ कैसे बैठी रहें मान में ।

(१४२)

किस भाँति आज ब्रजराज से करें वे लाज,
 रहता सदैव है समाया वह ध्यान में ।
 मन में बसी है मूर्ति उसी मन-मोहन की,
 हिचकें भला वे कैसे रूप-रस-पान में ।
 मृदु मुरली की तान प्राण में है गूँज रही,
 कैसे न सुनेंगी उसे उँगली दे कान में ॥ ६ ॥
 जिसने विपत्तियों से ब्रज को बचाया सदा,
 दिव्य बल पौरुष दिखाया बालपन में ।
 मार क्रूर कंस को स्वदेश का छुड़ाया क्लेश,
 सुयश-प्रकाश छिटकाया त्रिभुवन में ।
 सबको सदैव सिखलाया शुचि विश्व-प्रेम,
 गीता को बनाया उपजाया ज्ञान मन में ।
 दुःख को हटाया सुख-बेलि को बढ़ाया वह,
 श्याम मनभाया है समाया वृंदावन में ॥ ७ ॥
 वही मंजु मही वही कलित कलिंदजा है,
 ग्राम और धाम भी विशेष छवि-धाम हैं ।
 वही वृंदावन है निकुंज हुम-पुंज भी हैं,
 ललित लताएँ लोल लोचनाभिराम हैं ।
 वही गिरिराज गोपजन का समाज वही,
 वही सब साज बाज आज भी ललाम हैं ।
 ब्रज की छटा विलोकि आता मन में है यही,
 अब भी यहाँ ही शुभ-नाम घनश्याम हैं ॥ ८ ॥

(१४३)

देते हैं दिखाई सब दृश्य अभिराम यहाँ,
 सुषमा सभी की सुध श्याम की दिलाती है ।
 फूली फली सुरमित रुचिर द्रुमालियों से,
 सुरभि उन्हीं की दिव्य देह की ही आती है ।
 सुयश उन्हीं का शुक सारिका सुनातीं सदा,
 कूक कूक कोकिला उन्हीं का गुण गाती है ।
 हरी भरी दृग-सुखदाई मनभाई मंजु,
 यह ब्रज-मेदिनी उन्हीं की कहलाती है ॥ ६ ॥
 सुखद सजीली शस्य-श्यामला यहाँ की भूमि,
 श्याम के ही रंग में रँगी है प्रेम-भाव से ।
 रज भी पुनीत हुई उनके चरण छूके,
 शीश पर उसको चढ़ाते भक्त चाव से ।
 पाप-पुंज-नाशी उर-कमल-विकासी हुआ,
 यमुना-सलिल बस उनके प्रभाव से ।
 कर दिया पूरा उसे वर वृंदावन ने ही,
 जो थी कमी मेदिनी में स्वर्ग के अभाव से ॥ १० ॥

(१४४)

उन्माद

(१)

जब नहीं आकर किया तुमने हृदय में वास,
 हो अधीर स्वयं चला तब वह तुम्हारे पास ।
 पर न तुमको पा सका, की यदपि बहुत तलाश,
 लौट आया अन्त में होकर अतीव हताश ॥

(२)

दृष्टिगोचर हो न तुम कहते सभी मतिमान,
 सत्य हम भी क्यों न फिर यह बात लेते मान ?
 लोचनों को मूँद कर करने लगे हम ध्यान,
 हाय ! तो भी कुछ हमें न हुआ तुम्हारा ज्ञान ॥

(३)

चित्त देकर और सुन लो एक दिन की बात,
 सो रहे थे हम पड़े, बीती बहुत थी रात ।
 सामने तुम हो खड़े, ऐसा हुआ कुछ ज्ञात,
 किन्तु जब आँखें खुलीं तब हुआ वज्र-निपात ॥

(४)

खिलखिला कर हम कभी हँसते बहुत साह्लाद,
 और रोते हैं कभी पाकर अतीव विषाद ।
 प्रेम-वश करते तुम्हारा हम सदा गुणवाद,
 लाग क्यों कहते भला हमको हुआ उन्माद ?

(१४५)

(५)

हो निराश हृदय हुआ है अब अतीव अधीर,
किन्तु सूखा जा रहा है क्यों सदैव शरीर ?
लोचनों को क्या व्यथा है जो बहाते नीर ?
क्या इन्हें भी लग गया है प्रेम का वह तीर ?

(६)

सोच लो कब से बने हैं हम तुम्हारे दास,
क्यों हमें फिर कर रहे तुम बार बार निराश ?
बस तुम्हीं कह दो जहाँ पर है तुम्हारा वास,
है पहुँचता प्रेम का भी क्या वहाँ न प्रकाश ?

(७)

कर रहे कब से तुम्हारे हम गुणों का गान ?
पर तुम्हें भी क्या कभी आया हमारा ध्यान ? ।
दो बता हमको तुम्हारा है जहाँ संस्थान,
किस तरह होती वहाँ है प्रेम की पहचान ?

(८)

कुछ समझते हों परम शास्त्रज्ञ ज्ञान-निधान,
पर नहीं उनको तनिक भी है तुम्हारा ज्ञान ।
देख कर यह बन गये हम अब मूढ़ महान,
हाय ! तो भी चित्त में न हुआ तुम्हारा भान ॥

(९)

यदपि अब तक है हुई तुमसे नहीं पहचान,
किन्तु तुम सहृदय सरस हो है यही अनुमान ।
अब अधिक जाता सहा न वियोग-दुःख महान,
दे हमें दर्शन करो अब तो कृतार्थ सुजान !

(१४६)

पं० रामनरेश त्रिपाठी

पं० रामनरेश त्रिपाठी का जन्म सं० १८४६ वि० में ग्राम कोइरीपुर जिला जौनपुर में हुआ था। आप हिंदी के अच्छे विद्वान् तथा संस्कृत, उर्दू और अंग्रेजी भाषा के अच्छे जानकार हैं। खड़ी बोली के अनेक काव्य-ग्रंथों की आपने रचना की है, जिनमें पथिक, मिलन, स्वप्न, मानसी आदि प्रसिद्ध हैं। आपके कविता-कौमुदी नामक काव्य-संग्रह का बहुत आदर है, जिसके पाँच भाग प्रकाशित हो चुके हैं। इनके अतिरिक्त गद्य में भी आपने अनेक ग्रंथ लिखे हैं जिनमें सुभद्रा, बालकथा, कहानी आदि उल्लेख योग्य हैं। आप बहुत दिनों तक हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मंत्री पद में रहकर उसका बहुत कुछ काम कर चुके हैं। आजकल आप पुस्तक-प्रकाशन का व्यवसाय करते हैं। आप बहुत ही नम्र और मिलनसार हैं। खड़ी बोली के कवियों में आपका बहुत ऊँचा स्थान है।

(१४७)

विधवा का दर्पण

(१)

एक आले में दर्पण एक, किसी प्रणयी के सुख का सखा ।
 किसी के प्रियतम का स्मृति-चिह्न, किन्हीं सुन्दर हाथों का रखा ॥
 धूल की चादर से मुँह ढाँक, पड़ा था भार लिये मन का ।
 मूक भाषा में हाहाकार, मचा था उसके क्रन्दन का ॥

(२)

दीमकों ने उसके सब ओर, कोर कर अपनी मनोव्यथा ।
 बना दी थी उस आदरहीन, दीन की अतिशय करुण-कथा ॥
 मकड़ियाँ उस पर जाले तान, म्लान कर मुख की सुन्दरता ।
 दिखाती थीं करके विस्तार, रूप-मद की क्षणभंगुरता ॥

(३)

मुकुर यों कहने लगा सशोक, रोक कर मेरी मति-गति को ॥
 मनुज का मिथ्या है अभिमान, जान कर मेरी दुर्गति को ॥
 कभी दिन मेरे भी थे हाय, मुझे ले प्रियतम ने कर में ।
 प्रियतमा को था अर्पण किया, रोझ कर उस सूने घर में ॥

(४)

देखने को उसके अनमोल, गाल पर लोलुपता लटकी ।
 रसीली चितवन का उन्माद, मनोहरता मुसकाहट की ॥
 प्रियतमा ने पाकर एकान्त, चूम कर हर्ष मनाया था ।
 जानकर प्रियतम की प्रिय वस्तु, हृदय से मुझे लगाया था ॥

(५)

एक मुग्धा के कोमल हाथ, पोंछते थे मेरे मुख को ।
 हार पहनाते थे कर प्यार, कहूँ मैं कैसे उस सुख को ॥

(१४८)

कामिनी करके जब शृङ्गार, पास प्रियतम के जाती थी ।
प्रथम मेरी अनुमति के लिए, निकट मेरे नित आती थी ॥

(६)

सभी अङ्गों में उसके नित्य, छलकता था मद यौवन का ।
अजब था रङ्ग प्रेम से तृप्त, अधखुले कुञ्ज-विलोचन का ॥
अधर पर उसके मृदु मुसकान, निरन्तर क्रीड़ा करती थी ।
दृगों में प्रियतम की छवि नित्य, बिनाविश्राम विचरती थी ॥

(७)

दूध की सरिता सी अति शुभ्र, पंक्ति थी दाँतों की ऐसी ।
जुड़ी हो तारापति के पास, सभा ताराओं की जैसी ॥
मनोहर उसका अनुपम रूप, हृदय प्रियतम का हरता था ।
जभी मिलती थी, मैं जी खोल, प्रशंसा उसकी करता था ॥

(८)

कभी प्राणेश्वर को गल-बाँह, डालकर वह मुस्काती थी ।
गाल से प्रिय का कन्धा दाब, खड़ी फूली न समाती थी ॥
कराती थी वह मुझसे न्याय, "मुकुर ! निष्पक्ष सदा तुम हो ।
अधिक किसके मन में है प्रेम, हमारी आँखें देख कहो" ॥

(९)

गर्व उसका सुन, अधर कपोल, चिबुक को अगणित चुम्बन से ।
तृप्त कर प्रणयी निज सर्वस्व, वारता था विमुग्ध मन से ॥
देखता था मैं यह नित दृश्य, मुझे निद्रा कब आती थी ।
हृदय मेरा खिल उठता था, सामने वह जब आती थी ॥

(१४६)

(१०)

हृदय उसका था ऐसा सरल, प्रकृति में भी थी सुन्दरता ।
 वसन तन वदन देखकर मलिन कभी मैं निन्दा भी करता ॥
 मानती थी न बुरा तिल मात्र, न आलस या हठ करती थी ।
 स्वच्छ सुन्दर बन कर तत्काल, देखकर मुझे निखरती थी ॥

(११)

काम में रहती थी नित व्यस्त, न वह क्षण भर अलसाती थी ।
 ध्यान में प्रियतम के नित मस्त, इधर जब आती जाती थी ॥
 ठहर कर आँचल से मुँह पोंछ, प्यार से देख विहँसती थी ।
 देखती थी आँखों में मूर्ति, प्राण-धन की जो बसती थी ॥

(१२)

रहे थोड़े ही दिन इस भाँति, परम सुख से दोनों घर में ।
 अबानक यह सुन पड़ी पुकार, राष्ट्रपति को स्वदेश भर में ॥
 “कष्ट अब पर-पद-दलित-स्वदेश, भूमि में अन्तिम सहने को ।
 चलो वीरा, बनकर स्वाधीन, जगत में जोवित रहने को ॥

(१३)

प्रियतमा का वह प्राणाधार, मनस्वी युवकों का नेता ।
 राष्ट्रपति की पुकार को व्यर्थ, भला वह क्यों जाने देता ॥
 बड़ा भावुक था उसका हृदय, निरन्तर मग्न वीर रस में ।
 देश पर मरने का उत्साह, भरा था उसकी नस नस में ।

(१४)

सुखों का बन्धन क्षण में तोड़, देश के प्रति अति आदर से ।
 राष्ट्रपति की पुकार पर वीर, प्रथम वह निकला था घर से ॥

(१५०)

तभी से वह अबला दिन-रात, घोर चिन्ता में बहती थी ।
विजय की खबरों को दे कान, प्रतीक्षा में नित रहती थी ॥

(१५)

एक दिन बड़े हर्ष के साथ, राष्ट्रपति ने स्वदेश भर में ।
घोषणा की कि, "वीर ने घोर, युद्ध कर भोषण सङ्गर में ॥
विजय हम सबको देकर पूर्ण, चूर्ण कर रिपुओं के मद को ।
छोड़कर यह नश्वर संसार, प्राप्त कर लिया परम पद को" ॥

(१६)

उसो दिन उसी घड़ी से हाय, न मैंने फिर उसको देखा ।
कहाँ छिप गई अचानक हाय, रूप की वह अनुपम रेखा ॥
न तब से फिर आई इस ओर, भूल करके भी वह बाला ॥
पवन ने मेरे मुँह पर धूल, भोंक अन्धा भी कर डाला ॥

(१७)

दुलारों में नित पाली हुई, प्रेम को प्रतिमा वह प्यारी ।
खिलौना इस घर की वह हाय, कहाँ है सरला सुकुमारी ॥
अरे ! मेरी यह दीन-पुकार, कहीं यदि सुनता हो कोई ।
मुझे दिखला दे मेरा प्राण, जगा दे फिर किस्मत सोई ॥

(१८)

नहीं तो यश ले करके मुक्त, विरह-ज्वर से सत्वर मुझको ।
मिट्टा दे मेरा यह अस्तित्व, पटक कर पत्थर पर मुझको ॥
न जाने कब से चिन्तामग्न, विरह-विधुरा भूखी-प्यासी ।
कहाँ होगी वह विह्वल व्यथित, हाय ! करुणा की कविता-सी ॥

(१५१)

पं० रामचरित उपाध्याय

पं० रामचरित उपाध्याय का जन्म एक विद्वान् सरयूपारोण ब्राह्मण वंश में विक्रम संवत् १६२६ कार्तिक कृष्ण चतुर्थी रविवार को गाजीपुर में हुआ था। आपके पिता बड़े विद्वान् थे। उन्होंने लड़कपन में ही उपाध्याय जी को संस्कृत व्याकरण से परिचित करा दिया। परंतु विक्रम संवत् १६४४ में उनका वैकुण्ठवास हो गया। तब से उपाध्याय जी अपने पूर्व-पुरुषों की जन्मभूमि महाराजपुर (आजमगढ़) में सकुटुम्ब आ रहे और वहाँ तथा बरेली में अपने भ्राता पं० महादेव शास्त्री जी से विविध ग्रंथ पढ़ते रहे। सन् १८६० ई० में वे काशी चले आये और यहीं महामहोपाध्याय पं० शिवकुमार शास्त्री जी के गृह पर रहकर तीन चार वर्षों तक विद्याध्ययन करते रहे। आपकी बुद्धि विचक्षण थी; इससे व्याकरण और साहित्य का बहुत अच्छा ज्ञान सहज ही हो गया। इतने में एक रईस ब्राह्मण के पुत्र को पढ़ाने के लिए अपने गुरु की आज्ञा से वे काशी छोड़कर इटावे गए और प्रायः ढाई तीन वर्षों तक वहाँ रहे। इसके बाद फिर काशी चले आए और उसी वर्ष गणित की मध्यमा परीक्षा पास की। तत्पश्चात् आचार्य के भी दो खंड पास किये; सन् १६०३ ई० काशी छोड़कर अपने घर चले गए और वहीं पर रहकर जमींदारी तथा कृषि कार्य करने लगे। पं० रामचरित त्रिपाठी नामक एक कवि आपके जिले में रहते थे। उन्हीं की

(१५२)

देखा-देखी आपने भी पुराने ढंग की कविता शुरू की और १८०६ तक विजयी वसंत श्रावण शृंगार, सुधा-शतक, राम-चरितावली, बरवा चौसई, सिरनेत नौसई इत्यादि की रचना की। फिर लोगों का मुकाव खड़ी बोली की ओर देखकर सूक्ति-मुक्तावली, देवदूत, रामचरित-चंद्रिका, रामचरित-चिंता-मणि, देवी द्रौपदी, उपदेश-रत्नमाला, मेघदूत, विचित्र विवाह नामक पुस्तकों की रचना खड़ी बोली में की। संस्कृत के घटकर्पर काव्य की भाषा टीका भी आपने लिखी है। आपका जीवन बहुत ही सादा और पवित्र है।

(१५३)

नवरत्न

वाल्मीकि

(१)

आदि-कवे ! है काव्य आपका स्वाती-जल-सम,
 प्यासे चातक-तुल्य पान करते उसको हम ।
 कान्त कमल है काव्य आपका जग-सर-शोभित,
 भव्य भक्त हैं भ्रमर निरन्तर उस पर लोभित ।
 जग-जलधि-मौर के मध्य वह अधी जनों को सेतु है,
 जिज्ञासु जनों को सहज में ज्ञान-प्राप्ति का हेतु है ॥

(२)

कल्प-लता सी फलद आपकी उक्ति ललित है,
 सकल कलाओं-कलित विश्व-मन्दिर-प्रचलित है ।
 सुधा-सलिल से सिक्त कुसुम की वह क्यारी है,
 रस की है स्वर-सरित प्यार को भी प्यारी है ।
 वह तरुण-तरुण-कुल-कीर्ति को अनुसरणीया सरणि है,
 अति विषम विषय-विष-सरित में वह जन-तारुण-तरुण है ॥

(३)

राकापति-सम आप, अन्य कवि तारोपम हैं,
 रत्नाकर-सम आप, अन्य कवि पल्लव-सम हैं ।
 मृग सम हैं कवि अन्य धन्य मृगराज आप हैं,
 खग-सम हैं कवि अन्य मान्य खगराज आप हैं ॥

(१५४)

सत्कवि-कल-कुल के आपही एक अलौकिक मूल हैं,
अन्यान्य आधुनिक कवि मनो कोमल दल, फल, फूल हैं ॥

व्यास

(१)

वेद बनाये चार महत्तम जगदीश्वर ने,
भारत पञ्चम वेद बनाया व्यास-प्रवर ने ।
श्रुति के जितने पद्य प्रकट हैं ईश्वर-मुख से,
उन्हें अष्ट-गुण किया आपने विस्तृत सुख से ।
श्रीपति ने कर्मोपासना-ज्ञान कहे हैं तीन ही,
पर धन्य आपके कथन से शेष बचा कुछ भी नहीं ॥

(२)

सब वेदों के एक आप ही विज्ञाता थे,
सब तत्त्वों के एक आप ही निर्माता थे ।
सद्धर्मों के एक आप ही मुनि ! त्राता थे,
ज्ञान-रत्न के एक आपही वरदाता थे ।
यदि गुरुभारत में आप हरि-गीता को कहते नहीं ।
तो विमुख जनों के सामने हम मानव रहते नहीं ॥

(३)

तेजस्वी-गण-मध्य यथा नायक दिनकर है,
विषवालों के मध्य यथा अहिपति विषवर है ।
ज्यों कुबेर है धनी विश्व के धनवानों में,
वज्रायुध ज्यों बली विश्व के बलवानों में ।

(१५५)

ज्यों नभ के सम पाता कभी है प्रसार कोई नहीं,
 त्यों व्यास ! आपके सम अपर ग्रन्थकार कोई नहीं ॥

कालिदास

जितनी ही हैं सरल सरस उतनी कवितायें,
 कालिदास ! हैं प्रथित विश्व में वर उपमायें ।
 शृङ्गारो वरोक्ति आप ही की मिलती है
 खिले कमल के साथ मनो कोई खिलती है ।
 जो सुधा-सलिल के कान से भी न तृप्ति सम्प्राप्त है,
 वह तृप्ति आपकी उक्ति के प्रत्यक्षर में व्याप्त है ॥

दण्डी

वाल्मीकि के बाद व्यास का अनुशासन है,
 और व्यास के बाद आप ही का आसन है ।
 यमकों की जमघटा आपने दिखलाई है,
 भव्य-भाव की भङ्गि आपने सिखलाई है ।
 ज्यों त्रयी वेद त्यों ही त्रयी ग्रन्थ आपके ख्यात हैं,
 कवि-गुण कवि दण्डिन् ! आपके लोकत्रय को ज्ञात हैं ॥

माघ

जैसा ही पद ललित अर्थ-गौरव वैसा ही,
 जैसी उपमा पूर्ण, भाव-सौष्ठव वैसा ही ।

(१५६)

शब्दावृत्ति-विहीन, दोष का लेश नहीं है,
 अलङ्कार का केन्द्र, श्लेष अवशेष नहीं है।
 कवि माघ ! आपके काव्य में अगणित गुण-गण हैं भरे,
 वह अद्वितीय है, हृद्य है, विभु सा है सबसे परे ॥

भारवि

अर्थ-भाव-गाम्भीर्य-युक्त है ग्रन्थ बनाया,
 घट में सागर भरा आपने ही दिखलाया।
 अनुपम पद-विन्यास रत्न का मनो किला है,
 विविधालङ्कृति-पुष्प जहाँ सर्वत्र खिला है।
 जय भारतीय भारवि कवे ! अमर आपका नाम है,
 अभिराम काव्य है आपका सकल कला का धाम है ॥

श्रीहर्ष

सकल-शास्त्र-संयुक्त आपकी उक्ति सहो है,
 सरस सरल है कहीं, कठिन भी कहीं कहीं है।
 अद्भुत है श्रीहर्ष ! आपकी वर्णन शैली,
 वसुधा पर कल-कीर्ति चन्द्रिका सी है फैली।
 वह चम्पक-कलिका-तुल्य है अज्ञ रसिक-अलि के लिए,
 पर कण्ठ-लज्ज रति सी वही बुध-रसिकावली के लिए ॥

(१५७)

भवभूति

करुण-कथा की प्रथा यथा विधि कही आपने,
 कहीं हुआ जो नहीं, किया है वही आपने ।
 सुनकर के भवदुक्ति महीतल रो देता है,
 वज्र आत्म-काठिन्य पिघल कर खो देता है ।

जो शक्ति आपकी उक्ति में भवभूते ! अभिव्यक्त है,
 होकर के क्या निरुपाय वह सब कवियों से त्यक्त है ॥

जयदेव

जो मिठास जयदेव ! आपकी कृति में मिलती,
 वह सपने में भी न कहीं संसृति में मिलती ।
 वह प्रसादगुण-सहित, जटिलता से विरहित है,
 अलंकार के सहित भाव भी वहाँ निहित है ।

कल कोमल विमल पदावली हरि-कीर्तन से कलित है,
 शृंगार-सार-संचलित है वह लोकोत्तर ललित है ॥

(१५८)

पितृ-भक्त भीष्म

(१)

गङ्गा-उर के रत्न आप शन्तनु के सुत थे,
भीम कर्म कर भीष्म हुए पर देवव्रत थे ।
रहे आप आजानुबाहु भी गुण के गण थे,
अचलों से भी अचल आपके प्यारे प्रण थे ॥

(२)

परशुराम के शिष्य शस्त्र-शास्त्रों के ज्ञाता,
रहे आप, पर रहे सभी विधि तुष्ट विधाता ।
तनु को जलते देख पिता के कामानल से,
तुरत वचाया उन्हें आपने प्रज्ञा-बल से ॥

(३)

दासराज को वचन भयङ्कर दिया आपने,
राज्य, व्याह का नाम नहीं फिर लिया आपने ।
प्रण को रहते प्राण आपने कभी न छोड़ा,
छोड़ा सुख से स्वत्व, सत्य से वदन न मोड़ा ॥

(४)

सत्यवती के साथ पिता का व्याह कराया;
पितृ-भक्ति का भव्य भाव तुमने दिखलाया ।
पूर्ण प्रेम का पात्र पिता ने तुम्हें बनाया,
देकर आशीर्वाद तुम्हें, भव में सुख पाया ॥

(१५६)

(५)

किसकी इच्छा-मृत्यु आप को छोड़ हुई है,
 रण में किसकी शक्ति आपकी जोड़ हुई है।
 ब्रह्मचर्य के आप अलौकिक थे व्रतधारी,
 अपकारी के भी न आप कम थे उपकारी ॥

(६)

तुमने किया न व्याह यदपि माता कहती थी,
 अंबा भी आसक्त यदपि तुम पर रहती थी।
 चित्रांगद को राज्य पिता के वाद दिया था,
 भीष्म ! आपने धन्य वचन निर्वाह किया था ॥

(७)

प्रणी न केवल रहे भीष्म ! वर वीर रहे तुम;
 क्रोधी केवल न थे शुणो नरधीर रहे तुम।
 विजयी गंधर्वों का हुआ चित्राङ्गद पर ज्यों,
 मारा तुमने उसे तुरत जा अपने कर त्यों ॥

(८)

महापाप प्रण-भङ्ग आपने मान लिया था,
 प्रण से हटना नहीं, चित्त में ठान लिया था।
 गुरु से भी लड़ पड़े वचन पर किन्तु अड़े थे,
 वज्र जड़े से आप हृदय के बड़े कड़े थे ॥

(९)

अम्बा का अपमान आपने किया यथा था,
 फल भी उसका उग्र आपको मिला तथा था।

(१६०)

उस चंडी ने तुम्हें शिखंडी बन कर मारा,
 प्राण जाय, प्रण रहे, यही था ध्येय तुम्हारा ॥

(१०)

पर दबते थे भीष्म ! आप दुर्योधन से क्यों ?
 फिर भी उसका साथ न देते थे मन से क्यों ?
 हुपद-सुता के प्रश्नोत्तर अस्पष्ट कहे क्यों ?
 चीर-हरण के समय सभा में मौन रहे क्यों ?

(११)

कभी कभी स्पष्ट आप कहनेवाले थे,
 आपद में भी मित्र-साथ रहनेवाले थे ।
 'विजय मिलेगी तुम्हें नहीं सुत, रिपु पर रण से,'
 भीष्म ! आपने कहा इसी विधि दुर्योधन से ॥

(१२)

"हारोगे तुम यदपि साथ मैं दूँगा तो भी—
 दुर्योधन ! रण-यज्ञ-हवन मैं हूँगा तो भी" ।
 पहले ही कह दिया समर के तुमने उससे,
 सच कहने में वीर भला डरते हैं किस से ? ॥

(१३)

"नृप अर्जुन को छोड़ न मुझसे अन्य लड़ेगा,
 जान वृक्ष कर कौन काल के गाल पड़ेगा ?
 जीतेगा वह मुझे अन्त में" कहा आपने,
 दुर्योधन का व्यङ्ग्य वचन सब सहा आपने ॥

(१६१)

(१४)

युगल दलों से कहा समर का भाव आपने,

“धर्म-युद्ध हो” यही किया प्रस्ताव आपने।

भीष्म ! आपका वचन सभी ने मान लिया था,

शुद्ध क्रुद्ध हो बाद युद्ध आरम्भ किया था ॥

(१५)

दिया विजय-आशीष युधिष्ठिर को जब तुमने,

निज मरने की युक्ति कही वश हो तब तुमने।

वचन सत्य हो, मृत्यु मिले तो भी क्या डर है?

अजर अमर है कीर्ति, भीष्म ! नर नहीं अमर है ।

(१६)

तुमने पल में भीष्म ! भीम-मद चूर्ण किया था,

उसे शरों से मार समर से भगा दिया था।

अर्जुन को भी देख समर में अपने सस्मुख,

तुमने फूले अङ्ग बढ़ा मन में माना सुख ॥

(१७)

दस सहस्र नित रथी भीष्म ! तुमने मारे थे,

पाण्डव हो अति भीत काँपते वेचारे थे।

कभी किसी से किसी भाँति भी रुके न रोके,

हुए प्रशंसित आप वदन से सभी नरों के ॥

(१८)

अर्जुन का रथ कृष्ण, कपीश्वर-सहित उठा कर,

एक निमिष में फेंक दिया था बाण चला कर।

(१६२)

‘धन्य भीष्म’ कह उठे चकित हो कृष्ण वहाँ पर,
होते नर-वर वीर प्रशंसित नहीं कहाँ पर?

(१६)

टिकी न पर की पैज, आपका प्रण जब देखा,
किस तारा का हुआ सूर्य के सम्मुख लेखा ?
रण में हो जर्जरित कृष्ण ने भी प्रण छोड़ा,
सस्मित लख कर तुम्हें, लाज-विस्मित मुख मोड़ा ॥

(२०)

दसवें दिन भग गया तुम्हीं से पाण्डव-दल था,
ब्रह्मचर्य के तेज-युक्त तुममें अति बल था ।
हो करके भी वृद्ध युवा का काम किया था,
क्षात्र-धर्म के कर्म-मर्म को दिखा दिया था ॥

(२१)

कौन आप सां हुआ जितेन्द्रिय क्षत्रिय जग में ?
कण्टक होकर काम न उलभा किसके मन में ?
मिली न इच्छा-मृत्यु किसी भी नर-नायक को,
हा! किसने उपधान सुखद समभा शायक को?

(२२)

हृदय आपका सदय रहा पर बड़ा प्रबल था,
कभी किसी से कैपा न ऐसा कड़ा प्रबल था,
डिगा कभी भी तनिक नहीं कर्तव्य कर्म से,
धवलित था वह सदा धरा पर धैर्य, धर्म से ॥

(१६३)

(२३)

माता गुरु का भी न किया था तुमने कहना,
 प्रण-पूर्वक स्वाधोन पढ़ा था तुमने रहना ।
 डरते यम से भी न भीष्म ! इतने निर्भय थे,
 समर समय में मनो मचाते घोर प्रलय थे ॥

(२४)

काम, लोभ में भीष्म ! आपका रोध नहीं था,
 रण-रिपु के अतिरिक्त अन्य पर क्रोध नहीं था ।
 यदपि कर्ण ने वाक्य कटुक बहु बार कहा था,
 क्षमाशील थे अतः आपने उसे सहा था ॥

(२५)

विके न थे यदि भीष्म ! आप दुर्योधन के कर,
 पड़े रहे क्यों व्यर्थ आप फिर उसके ही घर ?
 अन्यायी का साथ आपने दिया न होता,
 निज हाथों अपवाद आपने लिया न होता ॥

(२६)

कहा आपने “कर्ण, साथ कौरव का छोड़ो-
 धर्म-नीति से प्रीति शीघ्र पाण्डव से जोड़ो ।”
 फिर ऐसा ही भीष्म ! आपने किया नहीं क्यों ?
 करे न, पर को कहे, बात है यही सही क्यों ?

(१६४)

(२७)

अन्यायी का सङ्ग भीष्म ! अन्याय नहीं है ?
 न्यायी पर आक्रमण शास्त्र में लिखा कहीं है ?
 सच्ची सुनिष्ठा, न्याय-निरत यदि रहे न कौरव,
 तो फिर उनके साथ आपका रहा न गौरव ॥

(२८)

कुरु-कुल का ले पक्ष पाण्डवों से लड़ते थे,
 विजय-कामना किन्तु युधिष्ठिर को करते थे।
 हुआ भीष्म ! क्या यही नोन का बदला देना,
 पड़ा सुयश के साथ तुम्हें भी अपयश लेना ॥

(२९)

कौरव से अनभिज्ञ कभी क्या आप रहे थे ?
 रह कर उसके सङ्ग व्यर्थ क्यों दुःख सहे थे ?
 पाण्डव के ही साथ आप क्यों रहे नहीं थे ?
 यदि उनके आचरण सत्य थे, भीष्म ! सही थे ॥

(३०)

कौरव का ही साथ आपने भीष्म, दिया क्यों ?
 पाण्डु-सुतों का पक्ष आपने नहीं लिया क्यों ?
 दोनों का ही नोन आपने पहले खाया,
 पाण्डव-दल किस भाँति कहो फिर हुआ पराया ?

(१६५)

(३१)

लोकोत्तर थे वीर जितेन्द्रिय निस्पृह जग में,
अपयश-काँटे बिछा दिये क्यों निज यश-मग में ?
एकाकी हो जिसे मृत्यु की भीति न होवे,
धर्म-नीति में धन्य ! उसे भी प्रीति न होवे ॥

(३२)

“जो कुछ मैंने किया आज तक भीष्म पितामह !
सत्य समक्षिण एक आपके ही बल से वह” !-
दुर्योधन ने क्या इस विधि न स्पष्ट कहा था ?
तभी कहा, जब युद्ध तुम्हें भी इष्ट रहा था ॥

(१६६)

नरोत्तमदास

नरोत्तमदास का समय सं० १५५० से १६०२ तक माना जाता है। वे जाति के ब्राह्मण और सीतापुर जिले में बाड़ी नामक पुरवे के निवासी थे। उनकी लिखी ध्रुवचरित्र और सुदामाचरित्र दो पुस्तकें बताई जाती हैं। सुदामा चरित्र की रचना सं० १५८२ में हुई थी। यह ब्रजभाषा का काव्य है। इसकी भाषा शुद्ध, मंजी हुई और व्याकरण के नियमों के अनुकूल है। इसके सब वर्णन यथार्थ हैं, और कविता भावपूर्ण, सरस और मनोमुग्धकारिणी है। इसीसे इनके संबंध में शिवसिंह सेंगर ने कहा है—सुदामा चरित्र क्या बनाया है मानो प्रेम-समुद्र बहाया है।

(१६७)

सुदामा-चरित्र

स्त्री—

लोचन-कमल दुख-मोचन, तिलक भाल,
 श्रवण कुँडल, मुकुट धरे माथ हैं ।
 ओढ़े पीत-वसन, गले में वैजयन्ती-माल,
 संख, चक्र, गदा और पद्म लिये हाथ हैं ॥
 कहत नरोत्तम, सदीपन गुरु के पास,
 तुमहीं कहत—हम पढ़े एक साथ हैं ।
 द्वारिका के गये हरि दारिद हरेंगे पिय,
 द्वारिका के नाथ वे अनाथन के नाथ हैं ॥१॥

सुदामा—

सिच्छक हौं सिंगरे जगको तिय, ताको कहा अबदेति है सिच्छा ?
 जे तप कै परलोक सुधारत, संपत्ति की तिनके नहिं इच्छा ॥
 मेरे हिये हरिके पद-पंकज, बार हजार लै देखु परिच्छा ।
 औरन को धन चाहिय वावरि, वाँभन को धन केवल भिच्छा ॥२॥

स्त्री—

दानी बड़े तिहुँ लोकन में जग जीवत नाम सदा जिनको लै ।
 दोनन की सुधि लेत भली विधि, सिद्धि करौ पिय, मेरो मतो लै ॥
 दीनदयाल के द्वार न जात सो और के द्वार पै दीन है बोले ।
 श्रीजगन्नाथ से जाके हितू सो तिहुँ पन क्यों कन माँगत डोलै ? ॥३॥

(१६८)

सुदामा—

छत्रिन के पन जुद्ध, जुवा, दल साजि चढ़ें गज-वाजिनहीं ।
 वैस को वानिज और कृषो, पन सूद्र को सेवन साजनहीं ॥
 विप्रन को पन है जु यही सुख-संपतिसों कछु काज नहीं ।
 कै पढ़िबो कै तपोधन है, कन मांगत बाँभनै लाज नहीं ॥४॥

स्त्री—

कोदो सवाँ जुरतो भरि पेट, न चाहति हों दधि दूध मिठौती ।
 सीत बितीत भयो सिसियात ही, हों हठती पै तुम्हें न हठौती ॥
 जो जनती न हितू हरि से तौ मैं काहे को द्वारिका ठेलि पठौती ?
 या घरतें कबहुँ न गयो पिय, दूटो तवा अरु फूटी कठौती ॥५॥

सुदामा—

प्रीति में चूक न है उनके, हरि मो मिलिहैं उठि कंठ लगायकै ।
 द्वार गये कुछु दैहैं भलो हमें, द्वारिकानाथ जु हैं सब लायकै ॥
 या विधि बीति गये पन द्वै, अब तौ पहुँचो बिरधापन आयकै ।
 जीवन केतो है जाके लिये हरिसों अब होहुँ कनावड़ो जायकै ॥६॥

स्त्री—

हूजै कनावड़ो बार हजार लौं, जौ हितू दीनदयाल सो पाइये ।
 तीनहुँ लोकके ठाकुर हैं, तिनके दरबार न जात लजाइये ॥
 मेरी कही जियमें धरि कै पिय, और न भूलि प्रसंग चलाइये ।
 औरके द्वारसों काज कहा पिय, द्वारिकानाथ के द्वारे सिधाइये ॥७॥

सुदामा—

छाँड़ि सबै भूक तोहि लगी बक आठहुँ जाम यही ठक ठानी ।
 जातहि दैहैं लदाय लड़ा भरि, लैहों लदाय यही जिय जानी ॥

(१६६)

पये अटारी अटा कहाँ तैं जिनको विधि दीन्ही है दूटी सी छानी ।
जौ पै दरिद्र लिलाट लिख्यौ तौ पै काहु के मेटेन जात अयानी ॥८॥

स्त्री—

फाटे पट, दूटी छानि, खायो भीख माँगि आनि,
बिना गये विमुख रहत देव-पित्रई ।
वे हैं दीनवँधु, दुखी देखि कै दयाल है हैं,
दैहैं कछु भलो, सो हों जानत अगत्रई ॥
द्वारिका लौं जात पिय, केतो अलसात तुम,
काहे को लजात, भई कौनसी विचित्रई ?
जौ पै सब जन्म ये दरिद्र ही सतायो तौ पै,
कौन काज आयहै कृपानिधि की मित्रई ? ॥९॥

सुदामा—

द्वारिका जाहु जू, द्वारिका जाहु जू, आठहु जाम यही भक तेरे ।
जौ न कहो करिये तौ बड़ो दुख, जैये कहाँ अपनी गति हेरे ?
द्वार खड़े प्रभु के छड़िया तहँ भूपति जान न पावत नेरे ॥
पाँच सुपारि, तैं देखु विचारि कै, भेंट को चारिनचाउर मेरे ॥१०॥

यह सुनि कै तव ब्राह्मनी गई परोसिनि पास ।
पाव-सेर चाउर लिये आई सहित हुलास ॥११॥
सिद्धि करी गनपति सुमिरि बाँधि डुपटियाँ खूँट ।
माँगत खात चले तहाँ मारग बोली वूट ॥१२॥

x

x

x

x

(१७०)

द्वारपाल—

सीस पगा न भगा तन में प्रभु, जानै को आहि, वसै केहि ग्रामा ।
 धोती फटी सी, लटी डुपटी, अरु पाँय उपानह की नहिं सामा ॥
 द्वार खड़ो द्विज दुर्बल, देखि रहो चकि सो वसुधा अभिरामा ।
 पूछत दीनदयालु को धाम, बतावत आपनो नाम सुदामा ॥१५॥

बोल्यो द्वारपालक, 'सुदामा नाम पाँडे,' सुनि

छाँड़े राजकाज, ऐसे जीकी गति जानै को ?

द्वारिका के नाथ हाथ जोरि, दौरि गहे पाँय

भेंटे लपटाय करि, ऐसे दुख सानै को ?

नैन दोउ जल भरि पूछत कुसल हरि,

विप्र बोल्यो—'बिपदा में मोहि पहिचानै को ?

जैसी तुम कीन्ही तैसी करै को कृपा के सिंधु,

ऐसी प्रीति दीनबंधु दीनन सों मानै को ?' ॥१६॥

ऐसे बिहाल बेवाइनसों भये कंटक-जाल लगे पुनि जोये—

'हाय ! महादुख पायो सखा, तुम आये इतै न, कितै दिन खोये ?'

देखि सुदामा की दीन दसा, करुना करिकै करुनानिधि रोये ।

पानि परात को हाथ छुयो नहिं, नैनन के जलसों पग धोये ॥१७॥

तन्दुल तिय दीन्हे हुते, आगे धरियो जाय ।

देखि राज-संपति-विभव दै नहिं सकत लजाय ॥१८॥

श्रीकृष्ण—

कछु भाभी हमको दियो, सो तुम काहे न देत ।

चाँपि गाँठरी काँख में, रहे कहो, किहि हेत ? ॥१९॥

(१७१)

आगे चना गुरु मातु दये ते लये तुम चाखि हमें नहिं दीने ।
 स्याम कही मुसकाय सुदामासों-चोरी की बानि में हौ जु प्रवीने ॥
 गाँठरि काँख में चाँपि रहे तुम, खोलत नहिं सुधारस भीने ।
 पाछिली बानि अजौं न तजी तुम तैसेई भाभी के तंदुल कीने ॥२०॥
 तन्दुल भाँगत मोहन, विप्र सँकोचतें देत नहीं अभिलाखे ।
 है नहिं पास कछू-कहि कै तेहि गोपि घनी विधि काँख में राखे ॥
 सो लखि दीनदयालु तहाँ,—यह चोरी करी तुम,—यों हँसि भाखे ।
 खोलि कै पोट अछोट मुठी गिरिधारन चाउर चाउसों चाखे ॥२१॥
 भौन भरे पकवान मिठाइन, लोग कहैं निधि हैं सुखमाके ।
 साँझ सवेरे चितै अभिलाखत, दाख न चाखत सिंधुर माके ॥
 वाँभन एक कोऊ दुखिया सेर-पावक चाउर लायो समा के ।
 प्रीति की रीति कहा कहिये, तिहि बैठे चचावत कंत रमाके ॥२२॥
 रुक्मिणी—

हाथ गह्यो प्रभुको कमला, कहै-नाथ, कहा तुमने चित धारी ।
 तंदुल खाय मुठी दुइ दीन कियो तुमने दुइ-लोक-बिहारी ॥
 खाय मुठी तिसरी अब नाथ, कहा निज वासकी आस विचारी ।
 रंकहि आप समान कियो तुम, चाहत आपहि होन भिखारी ॥२३॥
 श्रीकृष्ण—

धन्य कहा कहिये द्विज तू, तुमसों जग कौन उदार प्रवीनो ।
 पाछिली प्रीति निवाही भली विधि, दोष निवारि कै रोष न कीनो ॥
 हौं द्विज के चरनोदक-हेतु अजन्म कहाय कै जन्म सु लीनो ।
 आवन कै निज पाँवनसों यहाँ मो सो अपावन पावन कीनो ॥२४॥

(१७२)

परम कृपा दिन-दिन करी कृपानाथ जदुराय ।
 मित्र-भावना विसतरी दूनो आदर-भाय ॥२४॥
 देनो हुतो सो दे चुके, विप्र न जानी गाथ ।
 चलती बेर गुपालजी कछू न दीनो हाथ ॥२६॥
 गोपुर लौं पहुँचाय कै फिरे सकल दरवार ।
 मित्र-विजोगी कृष्णके नेत्र चली जलधार ॥२७॥

सुदामा—

वह पुलकनि, वह उठि मिलनि, वह आदरकी भाँति ।
 यह पठवनि गोपाल की, कछू न जानी जाति ॥२८॥
 और कहा कहिये जहाँ कंचनही के धाम ।
 निपट कठिन हरि को, हियो मोको दियो न दाम ॥२९॥
 घर घर कर ओड़त फिरे तनक दही के काज ।
 कहा भयो जो अब भयो हरि को राज-समाज ? ॥३०॥
 हौं आवत नाहीं हुतौ, बामहिं पठयौ ठेलि ।
 अब कहिहौं समुझाय कै—वह धन धरौ सकेलि ॥३१॥
 इमि सोचत सोचत भक्त आयो निज पुरतीर ।
 दीठि परी इक बारहिं हय-गयंद की भीर ॥३२॥

वैसेइ राज समाज, वेई गज-बाजि घने, मन संभ्रम छायो—
 कैधौं पखो कहूँ मारग भूलि कै, कै अब फेरि हौं द्वारिका आयो ॥
 भौन बिलोकियेको मग लोचन सींचत हो सब गाँव मझायो ।
 पूछिमे पाँडे कथा सबसों फिरि भौंपरि को कहूँ सोधु न पायो ॥३३॥

(१७३)

सुदामा—

जगर मगर जोति छाय रही चहुँ दिसि,
 अगर बगर हाथी-घोड़न को सोर है ।
 चौपर को बन्यो है बजार, पुनि सोनन के
 महल, दुकान की कतार चहुँ ओर है ॥
 भीड़-भाड़, धकापेल, चहुँ दिसि देखयत,
 झारिका तें दूनो यहाँ प्यादेन को जोर है ।
 रहिवे को ठाम है न काहुँ सों पिछान मेरी,
 बिन जाने बसे कोऊ हाड़ मेरे तोर है ॥३४॥

फूटी एक थारो बिन टोटनी की भारी हुती,
 बाँसकी पिटारी, औ कँथारो हुती टाटकी ।
 बेंटे बिन लुरी, औ कमंडलु हौ, टोकवो हौ,
 दूटो हुतो पावो, पाटी दूटी एक खाटकी ॥
 पठरौटा काठको कठौता कहुँ दीसै नाहिं,
 पीतरको लोटा हौ, कटोरो है न वाटकी ।
 कामरी फटी सीहुती, डौड़न की माला ताक,
 गोमती की माटी की न सुध कहुँ माटकी ॥३५॥

चौतरा उजारि कोऊ चामीकर-धाम कियो,
 छानी तौ उपारि डारि, छाई चित्रसारी जू ।
 जो हौं होतो घर तौ पै काहेको उठन देतो,
 होनहार ऐसी, खोटी दसा हो हमारी जू ॥

(१७४)

हौं तो हो न, काहू लोभ लाहु को दिखाय वाहि,
महल उठाय लयो हाय, सुखागारी जू ।
लामी-लूमवारी, दुख-भूख को दलनहारी,
गैया बनवारी-काहू सोऊ मारि डारी जू ॥३६॥

परिशिष्ट

रस

रस उस अनिर्वचनीय आनंद का नाम है जो कविता को पढ़ने-सुनने अथवा नाटक आदि को देखने से उत्पन्न होता है। रस के मूल आधार भाव होते हैं। किसी बात को देख या सुनकर मन की सामान्य दशा में जो अंतर आ जाता है, उसीको भाव कहते हैं। इसीसे भाव मन के विकार कहलाते हैं। गहराई की कमी-बेशी के कारण भाव दो प्रकार के होते हैं। मनमें बहुत देर तक ठहर कर उसे तन्मय कर देनेवाले भाव स्थायी भाव कहलाते हैं। परंतु कुछ भाव ऐसे भी होते हैं जिनका थोड़ी ही देर तक मन में संचार होता है और जो स्थायी भाव को आगे बढ़ाने में सहायता पहुँचा कर विलीन हो जाते हैं। ऐसे भावों को संचारी भाव कहते हैं। स्थायी भाव साधारणतया नौ माने जाते हैं—
१ शृंगार, २ हास्य, ३ करुण, ४ वीर, ५ रौद्र, ६ भयानक, ७ बीभत्स, ८ विस्मय और ९ शांत।

इसी प्रकार संचारी भावों की संख्या ३३ मानी जाती है—निर्वेद, शंका, मद, मोह, ग्लानि, उन्माद, आवेग, विपाद, हर्ष, व्रीडा, असूया, अवहित्य, धैर्य, चिंता, अपस्मार, वितर्क, गर्व, औत्सुक्य, जाड्य, स्मृति, दैन्य, त्रास, विबोध, निद्रा, मति, व्याधि, स्वप्न, आलस्य, मृत्यु (मूर्छा), श्रम, उग्रता, चापल्य और अमर्ष।

बोले राघव—प्रिये, भयावह से इस वन में,
शंका होती नहीं तुम्हारे कोमल मन में ?

[ख]

कहा जानकी ने हँसकर—उसको है क्या डर,
जिसके प्रवीण धनुर्धर ऐसा सहचर ?

इसमें सीता ने राम को हँसी में साथ साथ रहनेवाला सेवक कहा है। इसलिए इसमें हास (हँसी) नामक भाव है। परंतु यह हँसी का भाव सीता-राम के प्रेम का द्योतक और पोषक होकर आया है, केवल हँसी मात्र के लिए नहीं। प्रेम के भाव को आगे बढ़ाकर यह विलीन हो जाता है। इसलिए यहाँ पर हास संचारी भाव है और प्रेम (रति) स्थायी भाव।

भाव के कारण को विभाव कहते हैं। विभाव तीन प्रकार के होते हैं, आश्रय आलंबन और उद्दीपन। जिसके मनमें भाव उदय होता है उसे आश्रय कहते हैं, जिसे देखकर भाव उदय होता है, उसे आलंबन और जो विशेष परिस्थिति भाव को उद्दीप्त तथा तीव्र करती है उसको उद्दीपन। भीतरी भाव को प्रकट करनेवाले बाहरी शारीरिक चिन्ह अनुभाव कहलाते हैं।

मनुष्य के हृदय में भाव वासना-रूप से छिपे रहते हैं अतएव जब वह किसी ऐसे वर्णन को पढ़ता है जिसमें आश्रय के मन में आलंबन विभाव को देखकर उदित, विभाव से उद्दीप्त और अनुभावों से प्रकट होनेवाले स्थायी भाव का समावेश होता है, तब उसके हृदय में भी उस भाव की आनंदानुभूति हो जाती है जो मूल भाव की अनुभूति से भिन्न होती है। इसी विलक्षण आनंदानुभूति को रस कहते हैं। भाव आश्रय के हृदय में होता है और रस पठक अथवा दर्शक के हृदय में।

इसे एक उदाहरण देकर समझावेंगे। बरसात का दिन है। सड़क पर कीच हो रही है। एक बहुत मोटा आदमी साइकल चलाता आता है और गिरकर मिट्टी में लथपथ हो जाता है। इसे देखकर आस पास के नटखट लड़के ठहाका लगाकर ताली बजाने लगते हैं जिससे उनका चेहरा खिल उठता है और बतीसों दाँत दिखाई देने लगते हैं।

[ग]

इसमें हास स्थायी भाव है, नटखट लड़के जिसके आश्रय विभाव, साइकल चलानेवाला मोटा आदमी आलंबन विभाव, उसका साइकल चलाना और वह भी बर्साती दिन जब कि रास्ते में कीच हो रही थी उद्दीपन विभाव और लड़कों का ठहाका मारकर ताली बजाना, उनके चेहरों का खिलना और बत्तीसी का दिखाई देना बाहरी चिन्ह जिनसे भीतरी भाव (हास) प्रकट होता है अनुभाव हैं । इस वर्णन को पढ़कर नटखट लड़कों का हास आपके हृदय में एक साधारण आनंद के रूप में परिवर्तित हो जाता है जिसे रस (यहाँ पर हास्य रस) कहते हैं ।

ऊपर नौ स्थायी भाव गिना चुके हैं । इन नौ स्थायी भावों से नौ रस होते हैं । प्रेम (रति) से शृंगार, हास से हास्य, शोक से करुण, उत्साह से वीर, क्रोध से रौद्र, भय से भयानक, घृणा से बीभत्स, विस्मय से अद्भुत और शम अथवा निर्वेद से शान्त । कुछ लोगों ने अपत्य-स्नेह को भी अलग स्थायी भाव माना है जिससे वात्सल्य रस का होना माना जाता है ।

रस के उदाहरण

शृंगाररस

संयोग

राघव बोले देख जानकी के आनन को—

“स्वर्गगा का कमल मिला कैसे कानन को ?”

“नील मधुप को देख वहीं उस कंज कली ने ।

स्वयं आगमन किया”—कहा यह जनकलली ने ॥

‘प्रसाद’

वियोग

जागे सकल लोग भए भोरू । गे रघुनाथ भयउ अति सोरू ॥
रथकर खोज कतहुँ नहिं पावहिं । ‘राम राम’ कहि चहुँदिसि धावहिं ॥

[घ]

मानहुँ बारिनिधि बूढ़ जहाजू । भएउ बिकल बड़ बनिक समाजू ॥
 एकहिं एक देहिं उपदेसू । तजे राम हम, जानि कलेसू ॥
 निंदहिं आपु सराहहिं मीना । धिग जीवन रघुवीर विहीना ॥
 जो पै प्रिय वियोग विधि कीन्हा । तौ कस मीचु न माँगे दीन्हा ॥
 पृष्ठ ५-६ तुलसीदास

हास्य रस

कारीगर कोउ करामात के बनाइ लायो ,
 लीन्ही दाम थोरी जानि नई सुघरई है ।
 राय जू को रायजू रजाई दीन्ही राजी है कै ,
 सहर मैं ठौर ठौर सोहरत भई है ॥
 बेनी कवि पाइकै अघाइ रहै घरी द्वैक ,
 कहत न बनै कछु ऐसी मति ठई है ।
 साँस लेत उड़िगो उपल्ला और भितल्ला सबै ,
 दिन द्वै की बीती हेत रूई रह गई है ॥

करुण

[एक दिन बड़े हर्ष के साथ राष्ट्रपति ने स्वदेश भर में ।
 घोषणा की कि, 'वीर ने घोर युद्ध कर भीषण संगर में ॥
 विजय हम सबको देकर पूर्ण चूर्ण कर रिपुओं के मद को ।
 छोड़ कर यह नश्वर संसार प्राप्त कर लिया परम पद को] ॥
 उसी दिन उसी घड़ी से हाय, न मैंने फिर उसको देखा ।
 कहाँ छिप गई अचानक हाय, रूप की वह अनूपम रेखा ॥
 न तब से फिर आई इस ओर, भूल करके भी वह बाला ।
 पवन ने मेरे मुँह पर धूल झाँक अंधा भी कर डाला ॥
 न जाने कब से चिंता मग्न , विरह विधुरा भूखी प्यासी ।
 कहाँ होगी वह विह्वल व्यथित हाय, करुण की कविता सी ॥

क० कुं०, पृ० १५०, रामनरेश त्रिपाठी ।

[३]

युद्ध वीर

छूटत कमान और तीर गोली वानन के,
 मुसकिल होत सुरचान हू के ओट मैं ।
 ताही समै सिवराज हुकुम कै हला कियो,
 दावा बाँधि पखो हला कीर भट जोट मैं ॥
 भूषन भनत तेरी हिस्मति कहाँ लौं कहौं,
 किस्मति इहाँ तकि है जाकी भट झोट मैं ।
 ताव दे दे सूँछन, कँगूरन पाँव दे दे,
 अरि मुख घाव दे दे कूद परैं कोट मैं ॥

क० कुं०, भूषण, पृ० ५८,

दानवीर

हाथ गह्यो प्रभु को कमला, कहै—नाथ, कहा तुमने चित धारी ?
 तंडुल खाइ मुठी दुई, दीन कियो तुमने दुइ लोक बिहारी ।
 खाय मुठी तिसरी अब नाथ कहा निज वास कि आस विसारी ?
 रंकहि आप समान कियो, अब चाहत आपहि होन भिखारी ?

—नरोत्तमदास

रौद्र

सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे जोग,
 ताहि खड़ो कियो जाय जारिन के नियरे ।
 जानि गैर मिसिल; गुसैला गुस्सा धरि उर,
 कीन्हो ना सलाम, ना वचन बोले सियरे ॥
 भूखन भनत महावीर बलकन लागो,
 सारी पातिसाही के उड़ाय गये जियरे ।
 तमकते लाल मुख सिवा को निरखि भये,
 स्याह मुख नौरंग, सिपाह मुख पियरे ॥

क० कुं०, पृ० ५६, भूषण

[च]

भयानक रस

अफजल खान को जिन मयदान मारा ,
 बीजापुर गोलकुंडा मारा जिन आज है ।
 भूपन भनत फरासीसी त्यों फिरंगी मारि ,
 हबसी तुरुक डारे उलटि जहाज है ॥
 देखत में रुस्तम खाँ को जिन खाक किया ,
 साल की सुरति आजु सुनी जो आवाज है ।
 चौंकि चौंकि चकत्ता कहत चहुँघा ते ,
 यारो लेत रहो खबरि, कहाँ लौं सिवराज है ॥

क० कुं० पृ० ५९-६० भूपण

पृ० १०६ से १०८ तक सारा वर्णन भयानक रस का अच्छा
 उदाहरण है ।

बीभत्स रस

इस ओर देखो रक्त की यह कीच कैसी मच रही ,
 है पट रही खंडित हुए बहु रंड मुंडों से मही ॥
 कर-पद असंख्य कटे पड़े शस्त्रादि फैले हैं तथा ,
 रंगस्थली ही मृत्यु की एकत्र प्रकटी हो यथा ॥

क० कुं० पृ० १११, मैथिलीशरण गुप्त

अद्भुत रस

दाहिने वेद पढ़ें चतुरानन , सामुहैं ध्यान महेस धर्यो है ।
 बाएँ दुऔ कर जोरि सुसेवक , देवन साथ सुरेस खर्यो है ॥
 एतनि बीच अनेक लिये धन , पाँयनि आनि कुबेर पख्यो है ।
 देखि विभौ अपनो सपनै , बपुरो वह बाँभन चौंकि पख्यो है ॥

—नरोत्तमदास

[७]

आंतरस

है हरिनाम को आधार ।

और यह कलिकाल नाहिन रखो निधि व्योहार ॥

नारदादिसुकादि संकर दियो यहै विचार ।

सकल श्रुति का दधि मथत पायो इतनोई धृतसार ॥

दसहु दिसि गुन करम रोख्यो मीन को ज्यों जार ।

सूर हरि को भजन करतहि मिटि गयो भवभार ॥

क० कु० पृ० २४ सूरदास

वारसल्य रस

जसोदा हरि पालनै झुलावै ।

हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ सोइ कछु गावै ॥

मेरे लाल को आउ निदरिया काहे न आनि सुवावै ।

तू काहे न बेगि सी आवै तो को काहू झुलावै ॥

कबहुँ पलक हरि झूँद लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावै ।

सोवत जानि मौन है रहि करि सैन बतवावै ॥

इहि अंतरि अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरे गावै ।

जो सुख 'सूर' अमर मुनि दुर्लभ सो नँद-भामिनि पावै ॥

—सूरदास ।

अलंकार

कविता को सजाने के साधन अलंकार कहाते हैं । जैसे गहनों से स्त्री की शोभा बढ़ जाती है उसी तरह अलङ्कारों से कविता की । किसी बात को कहने का चमत्कार-भरा ढंग ही ये साधन हैं ।

उक्ति में यह चमत्कार दो प्रकार से लाया जा सकता है ; एक शब्द-विशेष अथवा शब्दाक्षरों से और दूसरा शब्दार्थ से । पहले को शब्दालङ्कार कहते हैं और दूसरे को अर्थालंकार । शब्दालंकार में शब्द-विशेष में चम-

[ज]

त्कार रहता है। उस शब्द-विशेष को हटाकर उसके स्थान पर दूसरा शब्द रख देने से वह नष्ट हो जाता है। एक उदाहरण लीजिये—

‘दर्ई दर्ई क्यों करत है दर्ई दर्ई सु कबूल।

‘दर्ई दर्ई सु कबूल’ (पृ० ३८) में ‘विधाता’ और ‘दिया’ इन दोनों के लिए एक ही शब्द ‘दर्ई’ आने से चमत्कार आ गया है। इस लिए यह शब्दालंकार है। परन्तु अगर पहले दर्ई के स्थान पर हम ‘विधाता’ रख दें और विधाता ‘दर्ई’ सु कबूल कहें तो अर्थ में भेद न होने पर भी चमत्कार नष्ट हो जाता है और अलंकार नहीं रहने पाता।

इसके विरुद्ध अर्थालंकार में चमत्कार शब्द में नहीं उसके अर्थ में होता है। और एक शब्द के लिए दूसरा शब्द रख देने पर भी वह नष्ट नहीं हो जाता है।—

‘कल्पलता-सी ललित फलद आपकी उक्ति है’। [पृ० १५३] में चमत्कार है जो उक्ति की कल्पलता से समानता करने से आया है। अब यदि हम कल्पलता के स्थान पर सुरतरु और उक्ति की जगह कथन भी रख दें (सुरतरु सा ललित फलद आपका कथन है) तो भी चमत्कार बना रहेगा क्योंकि यहाँ चमत्कार शब्द में न होकर अर्थ में है। इसलिए यहाँ अर्थालङ्कार है।

शब्दालंकार के भेद

(१) अनुप्रास, (२) लाटानुप्रास, (३) श्लेष और (४) यमक ये शब्दालङ्कार के प्रधान भेद हैं।

१ अनुप्रास

जब एक या अधिक अक्षर एक से अधिक बार आते हैं तब अनुप्रास अलंकार होता है। जैसे—

(१) तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये। (पृ० ६८) यहाँ त की कई बार आवृत्ति होने से अनुप्रास है।

[४]

(२) कहूँ तीर पर कमल अमल सोभित बहुभाँतिन। (पृ० ६८)
 यहाँ 'कमल' 'अमल' में म और ल एक क्रम से दो दो बार आये हैं।
 अनुप्रास मुख्यतया दो प्रकार का होता है जब एक या अधिक अक्षर
 दो या अधिक बार आता है (जैसे उदाहरण (१) में) तब उसे पुरुष-
 नुप्रास कहते हैं और जब एक या अधिक अक्षर दो दो बार आते हैं (जैसे
 उदाहरण (२) में) तब उसे छेकानुप्रास कहते हैं।

कठ, तालु, ओष्ठ आदि में से जब किसी एक ही स्थान से निकलने
 वाले अक्षर बार बार आते हैं तब भी अनुप्रास ही होता है। उसे श्रुत्यानु-
 प्रास कहते हैं। परन्तु इसके उदाहरण बहुत कम पाये जाते हैं।

लाटानुप्रास

जहाँ एक या अधिक शब्द एक ही अर्थ में किन्तु तात्पर्य भेद से दो
 या अधिक बार आवें वहाँ लाटानुप्रास होता है। जैसे—

(१) 'दर्ई दर्ई' क्यों करत है दर्ई दर्ई सु कबूल

यहाँ पहले दो 'दर्ईयों' और तीसरे 'दर्ई' का अर्थ एक ही है तीनों का
 अर्थ विधाता है परन्तु तात्पर्य भेद है। पहले दो 'दर्ई' विधाता के नाम मात्र
 की सूचना देते हैं, जब कि तीसरा 'दर्ई' भाग्य बनाने वाले विधाता का
 द्योतक है।

इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि दिना तात्पर्य-भेद के शब्द के
 दुहराए जाने से लाटानुप्रास नहीं होता। 'दर्ई दर्ई क्यों करत है' में दर्ई दर्ई
 दुहराया गया है परन्तु उसमें लाटानुप्रास नहीं है। हाँ, वीप्सा को अगर
 अलंकार मान लिया जाय तो वीप्सा अवश्य है। शब्द के दुहराने मात्र को
 वीप्सा कहते हैं।

(२) अभिमन्यु तो अभिमन्यु था वह भीत क्यों होने लगा।
 अभिमन्यु दोनों जगह पुरुष-विशेष का वाचक है किन्तु पहला अभिमन्यु
 उसकी संज्ञा मात्र है जब कि दूसरे में उसकी वह विशेषता भी समाविष्ट

[ज]

है जो 'वह भीत क्यों होने लगा' कह कर स्पष्ट रूप से व्यक्त की गई है ।
अतएव समानार्थ होने पर भी तात्पर्य भेद है ।

हिन्दी में पदच्छेद और अन्वय के भेद से अर्थ-भेद होने पर भी लाटानुप्रास माना जाता है जैसे नीचे लिखे पंक्तियों में—

जोगी जुगत जानी नहीं, कपड़े रँगें तो क्या हुआ ?

जोगी जुगत जानी, नहीं कपड़े रँगें तो क्या हुआ ?

यमक

जहाँ एक ही शब्द भिन्न भिन्नार्थ में एक से अधिक बार आवे वहाँ यमक अलंकार होता है । जैसे—

ऊँचे घोर मंदर के अन्दर रहनचारी,

ऊँचे घोर मंदर के अन्दर रहाती हैं ।

कंद मूल भोग करै कंद-मूल भोग करै,

तीन बेर खाती सो तौ तीन बेर खाती है ॥

भूषन सिथिल अङ्ग भूषन शिथिल अङ्ग,

बिजन डुलाती तेऽव बिजन डुलाती है ।

भूषन भनत सिवराज बीर तेरे त्रास,

नगन जड़ाती ते वे नगन जड़ाती हैं ॥

इसमें मंदर (१ मंदिर, २ मंदराचल पर्वत) कंद (१ मिठाई, २ मूल) भूषन (१ गहनों से, २ भूख से), बिजन (१ पंखा, २ निर्जन स्थान में), नगन जड़ाती (१ हीरे वगैरह जवाहरात जड़ाती थीं, २ नंगी होने के कारण जाड़े से ठिठुर रही हैं)—ये सब शब्द दो दो बार आवे हैं परन्तु प्रत्येक बार अर्थ अलग-अलग होता है जैसा कि शब्दों के सामने कोष्ठों के अन्दर दिये गये अर्थों से प्रकट है ।

आवश्यक—यमक और लाटानुप्रास का भेद अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए । यमक में जितनी बार शब्द आता है उतनी बार अर्थ भेद

[८]

होता है किन्तु लाटानुप्रास में अर्थ भेद नहीं होता केवल तात्पर्य भेद होता है। यह भेद निम्नलिखित पंक्ति में अच्छी तरह दिखाई देता है—

‘दई दई’ क्यों करत है, दई दई सु कबूल । (पृ० ३८) पहले दो बार जो दई दई आता है, उसमें वीप्साकार है। तीसरे ‘दई’ को साथ लेकर विचारने से लाटानुप्रास होता है जैसा ऊपर समझा दिया गया है और चौथे ‘दई’ को साथ लेकर विचारने से यमक ठहरता है क्योंकि पहले तीन बार जो ‘दई’ आया है उसका अर्थ विधाता होता है जब कि चौथे ‘दई’ का ‘दी’ ।

श्लेष

श्लेष वहाँ होता है जहाँ किसी अथवा किन्हीं शब्दों का एक ही बार प्रयोग होता है किन्तु अर्थ एक से अधिक किये जाते हैं। जैसे—

मूड़ चढ़ाए हूँ रहै, पखो पीठि कच भार ।

रहै गरै परि राखिबौ तऊ हियैं पर हार ॥ (पृ० ४२)

इसमें रेखांकित शब्दों के दो अर्थ हैं ।

मूड़ चढ़ाएँ हूँ = १ सिर पर रखने पर भी, २ (मुहावरे से) आदर करने अथवा अपने वश से बाहर चले जाने देने पर भी ।

रहे गरै परि = १ गले पर पड़कर रहती है, २ (मुहावरे से) दूर करने पर भी दूर नहीं जाती, अनावश्यक होने पर भी ।

आवश्यक—श्लेष और यमक दोनों में एक ही शब्द के एक से अधिक अर्थ होते हैं। भेद इतना ही है कि श्लेष में शब्द एक ही बार प्रयुक्त होता है परन्तु यमक में उतनी ही बार जितने उस शब्द के अर्थ होते हैं ।

[४]

अर्थालंकार

१. उपमा

जहाँ किसी वस्तु की समानता किसी अन्य प्रसिद्ध वस्तु से की जाती है वहाँ उपमा होती । जैसे—

कल्पना सी फलद आपकी उक्ति ललित है ।

इसमें उक्ति की समानता कल्पलता से की गई है ।

उपमा के चार अंग होते हैं । उपमेय (जिसकी समानता की जाय), उपमान (जिससे समानता की जाय), धर्म (जिस बात में समानता की जाय) और वाचक (समानतासूचक शब्द) ।

ऊपर दिये गये उदाहरण में 'आपकी उक्ति' उपमेय, 'कल्पलता' उपमान, 'फलद' धर्म और 'सी' वाचक है ।

जब उपमा के ये चारों अंग स्पष्ट लक्षित होते हैं । जैसे—ऊपर दिये गये उदाहरण में, तब पूर्णोपमा होती है ।

परंतु कभी कभी कोई अंग लुप्त भी रहते हैं । ऐसी उपमा लुप्तोपमा कहाती है । अधिकतर वाचक या धर्म या वाचक और धर्म दोनों ही लुप्त होते हैं । उपमेय और उपमान उपमा के प्रधान अंग हैं जिनके बिना उपमा का अस्तित्व नहीं रह सकता । उपमेय को प्रस्तुत और उपमान को अप्रस्तुत भी कहते हैं । जब वाचक लुप्त रहता है तब वाचक लुप्तोपमा, जब धर्म लुप्त होता है तब धर्म लुप्तोपमा और जब वाचक और धर्म दोनों लुप्त रहते हैं तब वाचक धर्म लुप्तोपमा होती है ।

२. उदाहरण

पूर्णोपमा—उक्ति कल्पलता सी फलद है ।

वाचक लुप्तोपमा—उक्ति कल्पलता फलद है ।

धर्म लुप्तोपमा—उक्ति कल्पलता सी है ।

वाचक धर्म लुप्तोपमा—कल्पलता उक्ति है ।

[३]

रूपक

रूपक वहाँ होता है जहाँ एक वस्तु का आरोप दूसरी वस्तु पर किया जाय । जैसे—

निर्वासित था राम राज्य था कानन में भी ।

सच ही है श्रीमान भोगते सुख वन में भी ॥

चंद्रातप था व्योम, तार का रत्न जड़े थे ।

स्वच्छ दीप था सोम, प्रजातरु पुंज खड़े थे ॥

इसमें व्योम चंद्र आतप, तारक रत्न, सोम, दीप और तरुपुंज प्रजा धनात्रे गये हैं । इस प्रकार वन विभव में राज्य-विभव देखा गया है ।

रूपक के मुख्य दो भेद होते हैं, सांग (साधयव) और निरंग (निरवयव) । सांग रूपक में वर्णनीय प्रधान वस्तु के अंग प्रत्यंग का रूपक बाँधा जाता है परंतु निरंग में केवल उस वस्तु का ही रूपक बाँधा जाता है, अंग-प्रत्यंग का नहीं । ऊपर वाले उदाहरण में यदि केवल 'वन-विभव रूप राज्य-विभव' कहा जाता तो निरंग रूपक होता परंतु उसमें उसके अंगों का भी वर्णन है । इसलिए उसमें सांग रूपक है ।

३. उत्प्रेक्षा

जहाँ जो जिस वस्तु का कारण नहीं है, उसे उसका कारण, और जो जिस वस्तु का फल नहीं है उसे उसका फल मान लिया जाता है वहाँ उत्प्रेक्षालंकार होता है । जहाँ एक वस्तु को दूसरी वस्तु मान लेते हैं वहाँ वस्तूप्रेक्षा, जहाँ जो कारण नहीं है उसको कारण मान लेते हैं वहाँ हेतूप्रेक्षा और जहाँ जो फल नहीं है उसको फल मान लेते हैं, वहाँ फलोप्रेक्षा होती है । जैसे—

(१) तुहिन सिखर, सरिता, सर विपिनन की मिलि सो छवि ।

छई मंडलाकार, रही चारहुँ दिसि यों फवि ॥

मानहु मनिमय मौलि माल-आकृति अलवेली ।

[६]

बाँधी विधि अनमोल गोल भारत सिर सेली ॥

अर्ध चंद्रसम सिखर स्रैनि कहुँ यों छवि छाई ।

मानहुँ चंदन धौरि, गौरि गुरु, खौरि लगाई ॥ (पृ० ८७-८८)

इसमें प्राकृत दृश्यों की मंडलाकार छवि की मौलिमाला (सिर पर पहनने की माला = wreath) से और अर्धचंद्राकार हिमाच्छादित शिखरों की सफेद चंदन की खौर से उत्प्रेक्षा की गई है । दोनों वस्तुत्प्रेक्षा के उदाहरण हैं ।

(२) दारिऊँ सरि जो न कै सका, फाटेउ हिया दरकि ।

इसमें हेतुत्प्रेक्षा है क्योंकि झूठे कारण की कल्पना की गई है । दाहिम फटता है सही परंतु इसलिए नहीं कि उसके दाने नायिका के दाँतों की बराबरी नहीं कर सके ।

बड़े पेट के भरन में है रहीम दुख बाढ़ि ।

गज के मुख याहि ते, दये दंत दुइ काढ़ि ॥ (पृ० ४६)

हाथी के दो दाँत बाहर निकले रहते हैं सही पर इसलिए नहीं कि उसे बड़े पेट के भरने में तकलीफ होती है ।

(३) पुहुप सुगंध करहिं एहि आसा ।

मकु हिरकाइ लेंइ हम पासा ॥

यहाँ पर झूठे फल की कल्पना की गई है । फूल फूलते हैं सही परन्तु इस फल की इच्छा से नहीं कि नायिका उन्हें सूँघने के लिये अपनी नासिका के पास ले जावेगी । इसलिए फलोत्प्रेक्षा है ।

४. संदेह

जहाँ वर्णनीय वस्तु के संबंध में किसी अन्य प्रसिद्ध वस्तु के साथ सादृश्य हो जाने के कारण यह निश्चय न हो सके कि वह उनमें से कौन है, वहाँ संदेहालंकार होता है । जैसे—

हिम स्रैनन सों घिस्यौ अद्रिमंडल यह स्मरौ ।

सोहत द्रोनाकार सृष्टि-सुखमा-सुख पूरौ ॥...

[७]

अथवा विमल वटोर विश्व की निखिल निकार्ह ।

गुप्त राखिवे काज सुदृढ़ संदूक बनाई ॥

कै यह जादू भरी विश्व बाजीगर थैली ।

खेलत में खुल परी शैल के सिर पर फैली ॥ (पृ० ८८)

श्रीधर पाठकजी की काश्मीर सुपमा और हरिश्चन्द्रजी के यमुना वर्णन में इसके बहुत उदाहरण हैं । 'कै', 'किधौं', 'वा' 'अथवा' इसके चिन्ह हैं ।

५. भ्रांति अथवा भ्रांतिमान्

भ्रांति अलंकार वहाँ होता है जहाँ कोई वस्तु धोखे से उसी के समान दूसरी वस्तु समझी जाय । जैसे नीचे लिखी पंक्ति में पक्षी को माणिक्य (लाल मणि) में मांस पेशी का भ्रम होता है—

पेशी समझ माणिक्य को वह विहग, देखो ले चला । (पृ० १११)

६. अपन्हुति

अपन्हुति में वर्णनीय वस्तु का निषेध करके उससे समानता रखने वाली किसी दूसरी वस्तु का होकर कहा जाता है । जैसे—

यह मुख नहीं, निर्मल कमल है, उफुल्लता बिखरा रहा ।

यदि यह इस प्रकार से कहा जाय तब भी अपन्हुति ही होगी—

मुख के बहाने देख लो निर्मल कमल है खिल रहा ।

७. दृष्टान्त

किसी कथन की पुष्टि में उदाहरण के रूप में उससे मिलती जुलती दूसरी बात कहना दृष्टान्त कहलाता है । जैसे—

संत न छाड़ै संतई कोटिक मिलै असंत ।

मलय भुजंगहि बेधिया सीतलता न तजंत ॥ (पृ० २७)

असंतों के साथ भी संत संतता ही करते हैं । इसकी सर्पों को भी सीतलता देने वाली चन्दन से पुष्टि की गई है ।

[व]

जब दृष्टान्त के साथ जैसे ज्यों आदि उदाहरण वाचक शब्द होते हैं तब उदाहरणालंकार हो जाता है। यदि ऊपर लिखे दोहे की दूसरी पंक्ति

मलय सर्प से ज्यों घिरा शीतलता न तजंत ।

होती तो वह दृष्टान्त का न होकर उदाहरणालंकार का उदाहरण होता ।

८. अर्थांतरन्यास

किसी सामान्य बात का विशेष बात से अथवा किसी विशेष बात का सामान्य बात से समर्थन करना अर्थांतरन्यास कहलाता है—

बड़े दीन को दुख सुने लेत दया उर आनि ।

हरि हाथी से कब हुतो कहु रहीम पहिचानि ॥ (५० ४७)

‘बड़े दीन पर दया करते हैं’ इस सामान्य उक्ति को भगवान् का ग्राह से गज की रक्षा करने वाली विशेष घटना से इसमें पुष्ट किया गया है ।

आवश्यक—दृष्टान्त और अर्थांतरन्यास दोनों में एक बात की दूसरी बात से पुष्टि की जाती है किन्तु दोनों में अन्तर इतना है कि अर्थांतरन्यास में एक बात विशेष होती है और दूसरी साधारण और दृष्टान्त में दोनों एक सी ।

९. उल्लेख

किसी बात का अनेक प्रकार से देखा, सुना, समझा अथवा वर्णन किया जाना उल्लेख अलंकार कहाता है । इसके उदाहरण-रूप में तुलसीदास जी की निम्नलिखित चौपाइयाँ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं—

जिनके रही भावना जैसी । प्रभु मूरति देखी तिन तैसी ॥

विदुषन प्रभु विराट मय दीसा । बहु मुखकर पदलोचन सीसा ॥

देखहिं भूप महा रणधीरा । मनहु वीर रस धरे शरीरा ॥

पुरवासिन देखहु दोउ भाई । नर भूषण लोचन-सुखदाई ॥

सहित विदेह विलोकहिं रानी । सिसु सम प्रीति न जाय बखानी ॥

[थ]

१०. व्याजस्तुति

जहाँ निंदा के बहाने स्तुति और स्तुति के बहाने निंदा की जाय, वहाँ व्याजस्तुति होती है—

हँसते हुए फिर पार्थ बोले अन्य विध वचनावली ।

“हो तो तुम बड़े ही क्रूर, मायावी, छली ॥

रवि के छिपाने के प्रथम मुझको सचेत किया नहीं ।

११ अत्युक्ति

जहाँ बात बहुत बड़ा कर कही जाती है वहाँ अत्युक्ति होती है । अत्युक्ति में जो बात कही जाती है उसके लिए आधार तो कुछ कुछ रहता है परंतु उसको जो विस्तार दिया जाता है वह बिल्कुल मिथ्या होता है । उसका सार मात्र ग्रहण करना चाहिए ।

साजि चतुरंग वीर रंग मैं तुरंग चढ़ि ,

सरजा सिवाजी जंग जीतन चलतु हैं ।

भूषण अनंत नाद विह्वल नगरन के ,

नदी नद सब गव्यरन के हलत हैं ॥

पेल खेल खेल ललक में खेल खेल ,

गजन की ठेल पेल सैल उकसत हैं ।

तारा सों तरनि धूरि धारा में लगत जिमि ,

धारा पर पारा पारावर यों हलत हैं । (पृष्ठ ५३)

इसमें शिवाजी की सेना के हाथियों के मद का नद-नदियों में मिलना हाथियों के रेल-पेल से पहाड़ों का उकसना, धूलि से ढक जाने पर सूर्य का ताराओं के समान लगना और समुद्र का थाली पर के पारे के समान हिलना ये सब अत्युक्तियाँ हैं ।

छंद

लय विशेष के लिए नियमित क्रम से शब्दों की सजावट छंद कहाती है । छंद तीन प्रकार के होते हैं—वार्णिक, मात्रिक और मुक्तक ।

[द]

वार्णिक छन्द अथवा वर्णवृत्त में वर्णों या अक्षरों की संख्या तथा उनके ह्रस्व दीर्घ का क्रम निश्चित रहता है। संस्कृत के श्लोक बहुधा वर्णवृत्त में ही होते हैं। मात्रिक छंद में केवल मात्राओं की संख्या और लय विशेष निश्चित रहती है। उसमें अक्षरों की संख्या और ह्रस्व दीर्घ के क्रम का कोई विचार नहीं रखा जाता। मुक्तक छंद में केवल अक्षरों की संख्या नियमित होती है, मात्राओं की संख्या का कोई विचार नहीं होता। हाँ लय विशेष का विचार रखना पड़ता है।

छंदों में प्रायः चार चरण हुआ करते हैं। केवल छप्पय और कुंडलिया में छः छः चरण होते हैं। अंगरेजी सॉनेटों की देखादेखी अब लोग चतुर्दशपदी भी लिखने लगे हैं जिनमें चौदह चरण होते हैं।

चरणों के अंत में एक समान अक्षर-रचना को तुक कहते हैं। जिन छंदों में तुक मिलाई जाती है वे स-तुकांत और जिनमें तुक नहीं मिलाई जाती वे अतुकांत कहे जाते हैं। तुक से छंदों में एक प्रकार का सौंदर्य आ जाता है। वर्णवृत्तों की लय इतनी मधुर होती है कि बिना तुक के भी वे सुंदर लगते हैं। इसी लिए हिंदी व संस्कृत में वर्ण वृत्त बहुधा अतुकांत ही होते हैं। परंतु मात्रिक और मुक्तक छंदों में माधुर्य लाने के लिए तुक का होना आवश्यक है। परंतु आजकल मात्रिक छंदों में भी कभी कभी तुक नहीं मिलाई जाती है।

व्याकरण के नियम के अनुसार वर्ण तीन प्रकार के होते हैं—ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत। ह्रस्व वर्ण के उच्चारण में जितना समय लगता है उसे एक मात्रा कहते हैं, दीर्घ के उच्चारण में जितना समय उसे दो मात्रा और प्लुत के उच्चारण में जितना समय उसे तीन मात्रा। पिंगल अथवा छंद शास्त्र में केवल ह्रस्व और दीर्घ स्वीकार किये गये हैं, प्लुत नहीं। अतएव तीन मात्राएँ किसी वर्ण की नहीं मानी जातीं। संयुक्ताक्षर से पहले का ह्रस्व वर्ण भी दीर्घ माना जाता है। यद्यपि यह नियम हिन्दी में सर्वत्र नहीं माना जाता जैसे तुम्हारा में संयुक्ताक्षर के पूर्व होने पर भी

[ध]

‘तु’ दीर्घ नहीं है। इसी प्रकार कभी २ खास कर कवित्त और सवैशों में दीर्घ भी ह्रस्व पड़े जाते हैं और कभी २ खास कर चरण के अंत में ह्रस्व भी दीर्घ। पिंगल में ह्रस्व को लघु और दीर्घ को गुरु कहते हैं। लघु का चिह्न चार विराम की तरह एक खड़ी पाई (।) होता है और गुरु का चिह्न लस अकार का सा (ऽ)।

गण

तीन वर्णों के समूह को गण कहते हैं। वर्णों के लघु गुरु के क्रम के हिसाब से आठ गण होते हैं जिसका विवरण नीचे दिया जाता है—

तीनों वर्ण गुरु	SSS	दैत्यारी	न	गण
तीनों वर्ण लघु	lll	दम्भन	न	गण
पहला वर्ण गुरु	Sll	वैभव	भ	गण
पहला वर्ण लघु	lss	सुराही	य	गण
बीच का वर्ण गुरु	lSl	विमान	ज	गण
बीच का वर्ण लघु	SlS	सारथी	र	गण
अंत का वर्ण गुरु	lSs	सरला	स	गण
अंत का वर्ण लघु	SsI	सामान	त	गण

संस्कृत के एक श्लोक में इसको इस तरह संक्षेप में कहा है—

मस्त्रिगुरुस्त्रि लघुश्च न कारो ।

भादि गुरुः पुनरादि लघुर्यः ॥

जो गुरु मध्य गतो रलमध्यः ।

सौंस्त गुरुः कथितोस्त लघुस्तः ॥

गति और यति

प्रत्येक छंद की अपनी अलग लय अथवा गति होती है। वर्ण वृत्तों में ह्रस्व दीर्घ के निश्चित क्रम के कारण लय अपने आप आ जाती है किंतु मात्रिक छंदों में लय का विशेष विचार रखना पड़ता है। गति के अतिरिक्त बड़े २ छंदों में ऐसे भी स्थल होते हैं जहाँ रुकना पड़ता है।

[न]

इन स्थलों को यति या विराम कहते हैं। यति गति के नियमन में बहुत कुछ सहायता पहुँचाती है।

समविषमादि भेद

सम—जिन छन्दों के चारों चरणों में बराबर बराबर मात्राएँ तथा एक सी गति होती है वे सम कहलाते हैं। जिनके पहले तथा तीसरे और दूसरे तथा चौथे चरणों में बराबर २ मात्राएँ तथा एक सी गति होती है वे अर्द्धसम कहलाते हैं। तथा जिनमें प्रत्येक चरण की अलग-अलग मात्राएँ और अलग अलग गति होती है वे विषम कहलाते हैं। हिन्दी में विषम छन्द बहुत कम होते हैं। हाँ, आजकल की गति-हीन तुक-हीन और मात्रा विचार रहित कविता में अगर विषम छन्द मानें तो माना जा सकता है। दो छन्दों के मेल से जो छन्द बनते हैं वे भी विषम माने जाते हैं परन्तु उनको संयुक्त छन्द मानना अधिक संगत होगा। ये भेद अधिकतर मात्रिक छन्दों में ही होते हैं। वर्ण वृत्तों में ये भेद प्रायः नहीं होते। इन्द्र-वज्रा और उपेन्द्रवज्रा के मेल से कई प्रकार के छन्द बन जाते हैं जो उपजाति कहलाते हैं। उनमें से कुछ अर्द्धसम और कुछ विषम के अन्तर्गत आजावेंगे परन्तु उनको इन भेदों के अंदर न ला कर अगर संकर छन्द कहें तो अधिक उपयुक्त होगा।

मात्रिक छंद

सम

१—चौपाई।

चौपाई के प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं, किंतु अंत में गुरु-लघु का क्रम नहीं आता :—

निकसि वशिष्ठ द्वार भये ठाढ़े । देखे लोग विरह दव दाढ़े ॥

कहि प्रिय वचन सकल समुझाये । विप्र वृन्द रघुबीर बुलाये ॥

(पृ० ३)

[प]

२—रोला

रोला के प्रत्येक चरण में २४ मात्राएँ होती हैं ११।१३ पर यति होती है ।

सादर सबहिं नवाइ सीस अवनीस भगीरथ ।

बढ़े बहुरि अगुवाइ धाइ चढ़ि वायु-वेग रथ ॥

चली गंग हूँ संग अँग ओजनि उमगाये ।

ज्यों कल कीरति रहति सदा सुकृतिहिं पछियाये ॥

(पृ० ९३)

३—हरिगीतिका

हरिगीतिका के प्रत्येक चरण में २८ मात्राएँ होती हैं, ५ वीं, १२ वीं १९ वीं और २६ वीं मात्रा लघु होती हैं—

हो निर्विकार तथापि तुम हो भक्तवत्सल सर्वदा,

हो तुम निरीह तथापि अद्भुत सृष्टि रचते हो सदा ।

आकार हीन तथापि तुम साकार संतत सिद्ध हो,

सर्वेश होकर भी सदा तुम प्रेश वक्ष्य प्रसिद्ध हो ॥

(पृ० २१५)

हरिगीतिका में की पहली दो मात्रा कम कर देने से गीतिका छंद होता है जिसमें २६ मात्राएँ होती हैं और तीसरी, दसवीं, सत्रहवीं और चौबीसवीं मात्रा लघु होती हैं ।

आल्हा अथवा वीर

आल्हा में ३१ मात्राएँ होती हैं; १६।१५ पर यति होती है:—

गैया माता तुम का सुमरौं, कीरति सब ते बड़ी तुम्हारि ।

करौ पालना तुम लरिकन कै, पुरिखन बैतरनी देउ तारि ॥

तुम्हरे दूध दही की महिमा, जानै देव पितर सब कोय ।

को अस तुम बिन दूसर जिहिका, गोबर लगे पवित्र होय ॥

(पृ० ८४)

[फ]

अर्ध सम

बरवा

दोहा

दोहे के पहले तीसरे तीसरे चरण में १३ और दूसरे चौथे चरण में ११ मात्राएँ होती हैं और अंत में गुरु-लघु होता है—

तै रहीम मन आपुनो, कीन्हों चारु चकोर ।

निसि बासर लाग्यो रहै, कृष्णचन्द्र की ओर ॥ (पृ० ४५)

दोहे का उलटा सोरठा होता है जिसके पहिले और तीसरे चरण में ११ और दूसरे और चौथे चरण में १३ मात्राएँ होती हैं । ऊपर वाले उदाहरण को उलट कर पढ़िए तो वही सोरठा हो जायगा—

कीन्हों चारु चकोर, तै रहीम मन आपुनो ।

कृष्णचंद्र की ओर, निसिबासर लाग्यौ रहै ॥

उल्लाला

उल्लाला के पहले-तीसरे चरण में १५ और दूसरे-चौथे चरण में तेरह मात्राएँ होती हैं अन्त में गुरु लघु गुरु (SIS) अथवा एक गुरु और तीन लघु (SIII) होते हैं—

इमि निकसि गंग गिरि गेह तैं,

गह्यो पंथ महि ओंक को ।

करि हरिद्वार कौं अति सुगत,

द्वार अगम परि लोक कौ ॥ (पृ० १००)

कोई कोई उल्लाला के प्रत्येक चरण में १३-१३ मात्राएँ भी मानते हैं ।

विषम

उदाहरण के लिये देखो पृ० १३० में संतस शीर्षक कविता । इस प्रकार के छन्दों के नियम ढूँढ़ना कठिन है । 'निराला' जी का कथन है कि उनके छन्दों में गति का एक विशेष नियम है परन्तु उस नियम का उन्होंने अभी तक उद्घाटन नहीं किया ।

[ब]

संयुक्त

कुण्डलिया

एक दोहा और एक रोला के मेल से कुण्डलिया बनता है । दोहे का अन्तिम चरण रोला के आदि में फिर से दोहराया जाता है—

जिय तरु को परिमल परसि लियो सुजस सब ठाम ।
 तिन भजन करि आपनों कियो प्रभजन नाम ॥
 कियो प्रभजन नाम बड़ो कृतघन बरजोरी ।
 जब जब लगी दयागि दिया तब झोंकि झकोरी ॥
 बरनै दीन दयाल, सेउ अब खल थल मरु को ।
 है सुख सीतल छाँह तास, तोखो जिन तरु को ॥
 (पृ० ६२)

छप्पय

एक रोला और एक उलाला के मेल से छप्पय बनता है—

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये ।
 झुके कूल सों जल परसन हित मनहुँ सुहाये ॥
 किधौँ मुकुर मैं लखत उझकि सब निज निज सोभा ।
 कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा ॥
 मनु आतप बारन तीर को, सिमिटि सबै छाये रहत ।
 कै हरि सेवा हित नै रहे, निरखि नैन मन सुख लहत ॥
 (पृ० ६८)

वर्णवृत्त

१—तोमर छन्द

स ज ज ॥S ॥S ॥S

बहु शब्द बञ्चक जानि । अलि पश्यतोहर मानि ॥
 नर छाँहई अपवित्र । शर खड्ग निर्दस मित्र ॥ (पृ० ३६)

[म]

६—मत्तगर्थद

७ भगण और २ गुरु

SII SII SII SII SII SII SII SII

ऐसे विहाल विवांइन सों भये कंटक जाल लगे पुनि जोये ।
 हाय महादुख पायो सखा, तुम आये इतै न, कितै दिन खोये ॥
 देखि सुदामा की दीन दसा, करुना करिकै करुनानिधि रोये ।
 पानि परात को हाथ छुयो नहिं, नैनन के जल सों पग धोये ॥

७—अरसात

७ भगण और १ रगण

SII SII SII SII SII SII SII SIS

हूजै कनावड़ो बार हजार लौं, जौ हितु दौन दयाल सों पाइए ।
 तीनहुँ लोक के ठाकुर हैं, तिनके दरवार न जात लजाइए ॥
 मेरी कही जिय में धरिकै पिय, और न भूलि प्रसंग चलाइए ।
 और के द्वार सों काज कहा पिय द्वारकानाथ के द्वार सिधाइए ॥

नोट—मोटे अक्षरों को ह्रस्व करके पढ़िए ।

सुक्तक छंद

१—मनहरण कवित्त

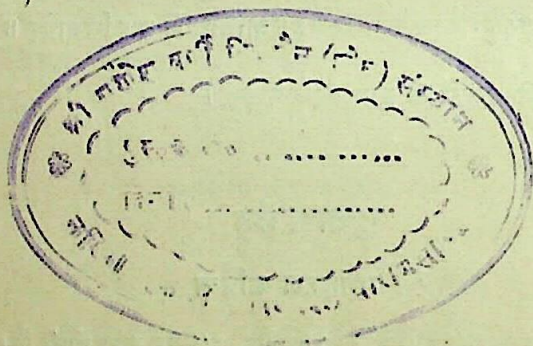
इसमें ३१ अक्षर होते हैं । १६ और १५ पर यति होती है । लघु
 गुरु का कोई नियम नहीं ।

बाजि, गजराज, सिवराज सेन साजत ही,

दिह्ली दलवीर दशा दीरघ दुखन की ।

[य]

तनियाँ न तिलक सुथनियाँ, पगनियाँ न,
 घामे घुमरात छोड़ि सेजनियाँ सुखन की ॥
 'भूपन' भनत पति बाँह वहियाँ न तेऊ,
 छतियाँ छवीली ताकि रहियाँ-रखन की ॥
 बालियाँ बिथुरि जिमि आलियाँ नलिन पर,
 लालियाँ मलिन मुगलानियाँ मुखन की ॥



टिप्पणियाँ

- पृ० ३—विरह-द्व दाने = विरह की आग में जले हुए । वरषासन = एक वर्ष तक खाने की सामग्री । सार सँभार = देख-रेख । निगरानी । भुआला = भूपाल । राजा । सुखारी = सुखी । प्रसन्न । नरनाह = नर-नाथ । राजा ।
- पृ० ४—सुठि = सुंदर । खूबसूरत । सत्यसंध = सदा सत्य का अनुसरण या आचरण करनेवाला । कदंब = समूह । ढेर । वसाना = वश चलना । रजायसु = आज्ञा । अनुमति । डरपना = डरना । भयभीत होना । रथांग = चक्रवाक या चक्रवा नामक पक्षी ।
- पृ० ५—गहवर = विकलता । बेचैनी । विरहागी = विरह की अग्नि या ताप । बिहाइ = छोड़ कर । त्याग कर । पीर पाना (पाइहि पीर) = दूसरे का कष्ट समझना । मति मोना (मति मोई) = मति फेरना । विचार शक्ति को अनुचित मार्ग पर ले जाना । जाम-जुग = दो पहर । खोज मारि या दुराई = इस प्रकार जिसमें (रथ के पहियों का) निशान न रह जाय या पता न चले कि किस मार्ग से गए हैं ।
- पृ० ६—बारिनिधि = समुद्र । सागर । हिमवान = हिमालय । धरनि = पत्नी । जोरु । सुकृत = सौभाग्य या उत्तम कार्यों का फल । सित पाख = शुक्ल पक्ष ।
- पृ० ७—अनुदिन = नित्य । प्रतिदिन । लोचना = (लोचहिं) अभिलाषा या इच्छा करना । पगों में मेलना (पगनु मेलति) = पैरों पर रखना या रखाना । प्रणाम कराना । सतभाय = सद्भाव । शुद्ध हृदय । सरहना = सराहना । प्रशंसा । दाहिने होना = अनुकूल या

प्रसन्न होना । बाउर = बावला । पागल । नारद-नारदी = नारद
का नारद-पन ।

पृ० ८—अवराधना = आराधन करना । वदना (वदति) = कहना ।
भेवना (भेवहि) = आर्द्र या तर करना । मिलाना । समउ = समय ।
वक्त । बामदेव = शिव । महादेव ।

पृ० ९—विसूरना = चिन्ता या सोच करना । गम करना = गमन
करना । जाना । ह्यना = (हइ) हनन करना । नष्ट करना । अभि-
मत = जिसकी मन में चाह हो । मन से चाहा हुआ । निहोरना =
(लौटने को) कहना । प्रार्थना करना । पन = प्रण । प्रतिज्ञा । अरं-
भना (अरंभेड) = आरम्भ करना । शुरू करना ।

पृ० १०—दिन गवनहि = दिन बिताती थी । अपरना = अपर्णा ।
(पार्वती का एक नाम जो उन्हें उस समय प्राप्त हुआ था, जब
उन्होंने शिव जी के लिये तपस्या करते समय पत्तों तक का खाना छोड़
दिया था ।) परन = पर्ण । पत्ता । चार फल = धर्म, अर्थ, काम
और मोक्ष । कुधर-कुमारिका = हिमालय की कन्या, पार्वती ।
पेषना = प्रेक्षण करना । देखना । पेम = प्रेम ।

पृ० १३—सायर = सागर । समुद्र । बोहित = जहाज । बड़ी नाव ।
कुरी = समूह । ढेर । काछू = कच्छप । कछुआ । पतारा = पाताल ।
उपराना (उपराही) = ऊपर आना । उतराना । वेहर वेहर = अलग
अलग । पृथक् पृथक् । थीरा = स्थिर । शान्त । मनुआ = मन ।
ममहि = ममत्व को । पवारै = फेंके । बटपार = रास्ते में यात्रियों
को लूटनेवाले । ठग । रूसे = विरक्त हो । उदासीन हो । मूसे =
ठगे गए । लूटे गए । दाहा = दहन किया गया ।

पृ० १४—डॉड़ि = डाँड़ी । डोरी । साढ़ी = मलाई । बिहून = बगैर ।
बिना । अँविरथा = व्यर्थ । वृथा । फजूल । निसत = जिसमें सत्व
या तत्व न हो । सारहीन । सँभार = होश । सुध । ज्ञान ।

(३)

भावै = जी चाहे तो । झार = ज्वाला । लपट । उपनी = उत्पन्न हुई । पैदा हुई । आग कह डीठी = आग को क्या समझता है । सौंह = सामने होकर । साध किए = इच्छा करते ही । रोवें = रोम । रोभाँ । भाँवरि लेइ = चक्कर खाता है । भाठी = भट्टी । काठी = जलाने की लकड़ी । ईधन । पोता किया = मिट्टी का लेप लगाया । (किसी बरतन को आँच पर चढ़ाने के पहले उस पर मिट्टी का लेप लगाते हैं ।)

पृ० १५—सरागहि = सलाखों या सीखों पर । खाध = खाने की चीज । खाछ पदार्थ । किलकिला = ऐसा समुद्र जिस की लहरों में भीषण शब्द होता हो । धरती लेइ सरग लहि = पृथ्वी से आकाश तक । साथे = साथे से । रंभ = घोर शब्द । भँवै = घूमे । चक्कर खाय । औसान = होश हवास । चेत । नियर = निकट । पास । सत डोला = धैर्य जाता रहा । साँकर = कठिनता । विकट स्थिति । निनारा = अलग । पृथक् । साँकर = पतला । तंग । सँकरा । चाँटा = च्यूटा । कटुक = सेना ।

पृ० १६—वेरा = वेदा । सैति = से । गाढ़ = मुश्किल । कठिन । ढीला = सुगम । आसान । वूड़ = दूबा । कान समुद्र घँसि लीन्हेसि = समुद्र में पैठ कर पतवार हाथ में ली । तुखारू = तुखार देश का घोड़ा जो सब से अच्छा होता है । गरियारू = महर । सुस्त । थाका = थक गया । शिथिल हो गया । चाँटी = च्यूटी । भाला = झोंका । झकोरा । अगमन = आगे की ओर । खेवा = नाव द्वारा समुद्र पार करना । पछ-राति = पिछली रात । हुत = था । पुरइन = कमल का पत्ता । रैन-मसि = रात का अंधकार । भिनसार = सवेरा । तड़का । अस्ति अस्ति = (वह सिंहल द्वीप) अवश्य है, अवश्य है । बिगस = खिलकर ।

पृ० १७—किरीड़ा = क्रीड़ा । मुकुताहल = मुक्ताफल । मनसा = मन

में संकल्प किया । धुन = लकड़ी में लगनेवाला एक छोटा कीड़ा ।
हियाव = साहस । हिम्मत । भूर = सूखा । शुष्क ।

पृ० १९—उधारि = उद्धार करो । बचाओ । मगन = डूबा हुआ ।
भव-अंबुनिधि = भव-सागर । ग्राह अनंग = कामदेव रूपी मगर ।
मोट = बोझ । गठरी का भार । सेवार = जल में होनेवाली एक
प्रसिद्ध वनस्पति जिसमें आदमी फँस जाता है । भकभोर = झोंके
देती है । जोर जोर से हिलाती है । नाम-नौका = ईश्वर का नाम
रूपी नौका । बेहाल = दुर्दशा-प्रस्त । बिहवल = विह्वल । घब-
राया हुआ । कूल = किनारा । तट । डरिया = डाल । शाखा ।
पारधि = शिकारी । साँधे बान = तीर का निशाना लगाए हुए ।
भाज्यौ चाहत = भागना चाहता हूँ । दुक्यो = घुसा हुआ है ।
सचान = बाज पक्षी । उवारै = उद्धार करे । बचावे । अहि =
साँप । सर = शर । तीर ।

पृ० २०—दर = दरवाजा । जगह । चिन्तामणि = चिन्ताएँ दूर करने-
वाला । पति = प्रतिष्ठा । इज्जत । चेरी = दासी । पर-पीरक =
दूसरे की पीड़ा या कष्ट को समझनेवाले । बिबल्ल = बलहीन ।
नंगा । परिबसन = ऊपर ओढ़ने का कपड़ा । चादर । अरि =
शत्रु । दुश्मन । अविगत = निर्गुण ब्रह्म । हति = हत्या करके । मार
डाल कर । आसु = शीघ्र । जल्दी । कुचील = मैले कुचैले वस्त्र
पहने हुए । कुदरसन = देखने में बुरा । बदशकल ।

पृ० २१—धरनि = पृथ्वी । हुम = कल्प वृक्ष । सायर = सागर ।
समुद्र । ओर = अन्त । अपथै = बुरे मार्ग पर । अकुलायो =
आकुल हुआ । घबराया । चक्रित = चकित । आश्चर्य-युक्त ।
सीस डुलायो = सिर हिलाया । अस्वीकृति की मुद्रा दिखलाई ।
विरद = तारीफ । प्रशंसा । आपन-पौ = अपना-पन । अपना

(५)

स्वतन्त्र रूप । भुजंग = साँप । अरगजा = शरीर में लगाने का
अनेक सुगन्धित द्रव्यों का लेप । मरकट = बंदर ।

पृ० २२—पाहन = पाषाण । पत्थर । रीतो = खाली । निषंग = तर-
कश जिसमें तीर रखे रहते हैं । ठरै = प्रसन्न हो । गरै = गल गया ।
नष्ट हो गया । राँकल = धनहीन । गरीब । रूपल = रूपवान ।
सुन्दर । वरै = वरण करे । पति रूप में प्राप्त करे । छुरै = छले ।
धोखा दे । जठर जरै = माता के गर्भ में भाकर कष्ट भोगे । धरतो =
संवित करता । एकत्र करता । टरतौ = कम होता । घटता । राज-
जम = यमराज । गाँठ में परतो = अपने पास आ जाता । सुमि-
रन-गोन = ईश्वर के नाल-स्मरण रूपी गोन या बोरे जिनमें
माल भरा जाता है । विप्र-प्ररोहन = ब्राह्मण शरीर रूपी बैल ।
पेलिकै = जबरदस्ती घुस कर । बीच कौन जो अरतो = ऐसा
कौन था जो बीच में रोकता या अड़ता । अकरन = न करने योग्य
काम । करन = करने योग्य काम ।

पृ० २३—उछेद = उच्छेद । जड़ से खोदना । बचन छुंछै = कहने के
विपरीत काम करे । नरहरि = नृसिंह अवतार । बैरोचन को सुत =
राजा बलि । हठि = जबरदस्ती । जालंधर-जुवती = जलंधर दैत्य
की स्त्री रुन्दा जिसकी तपस्या छल से विष्णु ने भंग करके जलंधर के
प्राण लिए थे । आनुसुत = राजा कर्ण । राम = भ्रम । परिभ्रम ।
मेहनत । विरोधे = विरोध करके । अपने पनहि = अपना महत्त्व
देखकर ही । अपनी ओर देखकर ही । सुरसरि = गंगा ।

पृ० २४—पन जात टरो = प्रण दूटा जाता है । प्रतिज्ञा भंग हुई जाती
है । कुसलात = कुशल । खैरियत । अरसात = आलस्य करता
है । परम पद = मोक्ष । मुक्ति । घृतसार = नवनीत । मक्खन ।
जार = जाल । नोनहरामी = नमकहराम ।

पृ० २६—अछै पुरुष = अक्षय पुरुष । ब्रह्म । तिर-देवा = ब्रह्मा, विष्णु
१२

(६)

और शिव ये तीनों देवता । पात = पत्ता । दूजा कुल का = वर्ण-
संकर । दोगला । वंदा = दास । सेवक । घट = शरीर । चक-
मक = एक प्रकार का पत्थर जिसे रगड़ने से भाग निकलती है ।
कागा = काग । कौआ ।

पृ० २७—गूंगा गुड़ खाइ कै = उसी प्रकार जिस प्रकार गूंगा गुड़
खाकर उसका स्वाद नहीं बतला सकता । थोथा = जिसमें कुछ सार
न हो । निःसार । भखै = खाय । भोजन करे । संचै = संचित
करे = एकत्र करे । इकट्ठा करे । संतई = सन्तपन । साधुता ।
तजंत = तजता है । कुटकी = छोटा टुकड़ा । लखराव = बहुत
बड़ा पेड़ । भुमड़ी = झोपड़ी । साकट = दुष्ट । खल । खाला का
घर = मौसी का घर । आराम करने की जगह ।

पृ० २८—अमल = नशा । मादक पदार्थ । चिक = सीकों आदि का
बना एक प्रकार का परदा । मनका = माला की गुरिया या दाना ।
मधूकरी = साधुओं की एक प्रकार की भिक्षा जो थोड़ी थोड़ी कई
जगह से ली जाती है । लुके = भरे-पूरे । अघाए हुए । सन्तुष्ट ।
अवत = आती है । गरीब-नेवाज = गरीबों पर दया करनेवाले ।
लाख लोग लगि जाहिं = लोग लाख शिकायत करें ।

पृ० २९—पूरिया = पुड़िया । रहिये लाग = मिलकर या पास रहे ।
बपुरा = बेचारा । समाना = समाया । प्रविष्ट हुआ । वूझ = ज्ञान ।
दाम = धन । दौलत । लोय = भाटे आदि की लोई । कथनी =
जबानी कही हुई बातें । तुपक = तोप । पोव = प्रिय । पति ।
बेलरो = बेल । बल्ली ।

पृ० ३०—पैडा = तास्ता । मार्ग । मिरग = मृग । हिरन । पूर = भरपूर ।
पूरी तरह से । दीसई = दिखाई पड़ता है । माथे सिल परै =
उस पर वज्र गिरे । अनदान = अन्न का दान । उपाधि = झगड़ा ।
बखेड़ा । झंझट । चवैना काल को = काल या मृत्यु का भक्ष्य ।

(७)

बुदबुदा = बुलबुला । हीरा जनम = हीरे के समान बहुमूल्य जन्म ।

पृ० ३१—आछे = अच्छे । अले । हेत = प्रेम । नौबत लेहु
बजाय = अपना महत्व स्थापित कर लो । अपनी शान दिखला लो ।
दसों द्वार का पींजरा = शरीर, जिसमें दस द्वार या छिद्र हैं ।
बुधै = बोए । तिरसूल = त्रिशूल । बहुत बड़ा काँटा या कष्टदायक
पदार्थ ।

पृ० ३३—अनन्ता = पृथ्वी । सप्त ईति = खेती को हानि पहुँचानेवाले
अतिवृष्टि, अनाट्टि, टिड्डी, चूहे, पक्षी, शत्रु का आक्रमण आदि सात
प्रकार के उपद्रव । विमुक्ता = मुक्त । रहित । अल्पधी = छोटी बुद्धि
के लोग । कल्पसाखी = कल्पवृक्ष । निरुनगा = नदी । पूर =
धारा । कामगो = कामधेनु । रुरी = सुन्दर । स्वर्वाजि = इन्द्र
का घोड़ा, उच्चैःश्रवा । स्वर्दन्ति = ऐरावत । क्षमी = क्षमा
करनेवाले । क्षमाशील । अरोगी = रोग-रहित । स्वस्थ । न्हाण =
स्नान । चिन्ताप्रहारी = चिन्ताओं का नाश करनेवाले । शची =
इन्द्र की पत्नी, इन्द्राणी । सती = दक्ष की कन्या जो शिव जी को
व्याही थीं । सद्मिनी = कोठरी । घर । पुत्रिणी = पुत्रवाली ।
चित्रिणी, पद्मिनी = कोक शाख के अनुसार स्त्रियों के भेद ।
संभ्रमी = भ्रम में पड़ा हुआ । अलोक = अपयश । होम-धूम = हवन
का धूँआ । चलदल = पीपल का पत्ता । बाल = (१) बालक ।
(२) केश । द्विज = विद्यार्थी । वृत्ति = (१) जीविका । (२) सूत्रों के
अर्थ । वेष्ठा = निशाना । वेध । विभिचारी = (१) पर-स्त्री-
शामी । (२) साहित्य का संचारी भाव । पर-नारी = (१) पराई
स्त्री । (२) दूसरे के हाथ की नाड़ी । मानिनी = मान करनेवाली
नायिका । मानभंग = (१) अपमान । अप्रतिष्ठा । (२) मान
का झूटना ।

पृ० ३५—मोचु = मृत्यु । मौत । बन्ध्या = (१) बाँझ । वह स्त्री जिसे

. (८)

सन्तान न होती हो । (२) निष्फल । विधवा = (१) वह स्त्री जिसका पति मर गया हो । (२) जिसमें धवा (धव) का पेड़ न हो । श्रीफल = (१) लक्ष्मी की प्राप्ति । (२) वेल (जिससे कुच की उपमा दी जाती है ।) पाप = कष्ट । तकलीफ । पट्टन = नगर । अध-ओघ = पापों का समूह । आन जन्म हरियतु है = दूसरा जन्म हारते या गँवाते हैं; अर्थात् मुक्त हो जाते हैं । बरवाहन = अच्छे और बढ़िया हाथी । देवसभा = देवताओं की मूर्तियाँ । सुरराज = इन्द्र ।

पृ० ३६—जूझ = युद्ध । समर । चयन = चैन । सुख । आराम । बहुनायक = बहुत सी स्त्रियों का पति । जारज—वर्णसंकर । दोगला । उदयन = अभ्युदय । उन्नति । नारिकेर = नारियल । द्विस्वभाव = दुविधा की बात कहने का स्वभाव । वंचक = ठग । पश्यतोहर = देखते देखते चीजें चुरा लेनेवाला । खंग = खड्ग । तलवार । चालनी = आटा छानने की छलनी । पुंश्चली = दुश्चरित्रा । व्यभिचारिणी । ति = स्त्री । औरत । रसा = पृथ्वी । भूमि । मग थके = रास्ते बन्द हो गए ।

पृ० ३८—अनाकनी = आनाकानी । बात सुन कर भी अनसुनी करना । गुहारि = पुकार । तारन बिरदु = तारने के सम्बन्ध में जो प्रसिद्ध हो । बारक = एक बार ही । बारनु = हाथी । तरहरि = नीचे । धरहरि = निश्चय । दई दई = हे दैव ! हे दैव ! दई दई = दैव अर्थात् ईश्वर की दी हुई । तूठे = सन्तुष्ट और प्रसन्न । जगबाइ = संसार की हवा । अपरि = अंगीकार कर के । कोरिक = कोटिक । करोहों । हियधर = हृदय-देश । निसान = ध्वजा । पताका ।

पृ० ३९—उज्जलु = उज्ज्वल । उज्जल । सफेद । चखनु = आँखों पर । कनक = (१) सोना । (२) धतूरा । प्रयागु = तीन नदियों या वस्तुओं का संगम स्थान (यहाँ अभिप्राय है कृष्ण की श्याम

(६)

और राधिका की गौर छवियों—यमुना और गंगा—तथा भक्ति के अनु-
राग—सरस्वती—का एक स्थान पर होना। साथ = समूह।
झुंड। डस्यो रह्यो = डाला या पड़ा हुआ। पगारु = इतना
छिछला जिसे पैरों से चल कर ही पार कर सकें। अपत = बिना
पत्तों की। हमामु = हमाम या नहाने की गरम की हुई कोठरी।

पृ० ४०—बानक = वेष-भूषा। ठाठ। न ए = न थे। विससियहि = विश्वास
किये जायें। नए = विनम्र या विनीत हुए हुए। आँटे परि = दाँव
या घात में पड़ कर। नल-नीर = नल का पानी अर्थात् फुहारा।
बीछु = अन्तर। करक। अरक = (१) भाक। नदार। (२)
सूर्य। दुराज = द्विराज्य। दो राजाओं का राज्य। भावस =
अमावास्या। भज्यो = (१) भागा। (२) भजन किया।
वरिया = अवसर। बार। करिया = करणधार। केवट। पार
उतारनेवाला। सोधि = ढूँढ कर। तलाश कर।

पृ० ४१—औथरौ = उथला। छिछला। बाइ = बावली। अकस =
प्रतियोगिता। प्रतिद्वन्द्विता। श्रुति सुन्नत्यो = श्रुति और स्मृति।
निसक = शक्तिहीन। निर्बल। कमजोर। उलँघि = उल्लंघन
करके। छाया-ग्राहिनी = किसी की छाया या परछाँही देख कर ही
उसे पकड़ कर खा जानेवाली राक्षसी (जैसे—हनुमानजी के समुद्र
पार करते समय उन्हें खींचनेवाली राक्षसी सिंहिका थी।)
सराध-पखु = ब्राह्म का पक्ष। पितृपक्ष। बाइसु = वायस। कौआ।
पृ० ४२—ओड़ = गधे पर घोड़ा ढोनेवाला। चहलैं = कीचड़ में।
यै-नै = वय या अवस्थारूपी नदी। एकाएक = एकाकी। अकेला।
ब्यौसाइ = (व्ययसायी) सहायता करनेवाला। निदाघ = गीष्म
ऋतु। गरमी के दिन। गलीतु = दुर्दशाग्रस्त। बुरी अवस्था में।
कहलाने = व्याकुल हुए। विकलता में पड़े। दीरघ दाघ = बहुत
अधिक तापवाला। बहुत गरम। लटुवा = बच्चों के घुमाने का लट्टू

.(१०)

नामक खिलौना । बादि = वृथा । व्यर्थ । फजूल । सतर है = टेढ़े होकर । ऐंठकर । गैन = गगन । आकाश । बलियै = बलिहारी जाऊँ । निछावर होऊँ । मोहु = मोह । प्रेम ।

पृ० ४५—अच्युत-चरण-तरंगिनी = गंगा जो विष्णु के चरणों में विहार करनेवाली कही गई है । इंदव-भाल = जिसके मस्तक पर चन्द्रमा है; अर्थात् शिव । मुनि-पत्नी = अहल्या जिसका उद्धार रामचन्द्र जी ने अपने चरणों के स्पर्श से किया था । फरजी = शतरंज का वजीर नामक मोहरा । (शतरंज का प्यादा नामक मोहरा पहले तो सीधा चलता है; पर जब वजीर के घर में पहुँचता है, तब उसके न रहने पर स्वयं वजीर हो जाता और सीधे के सिवा टेढ़ा भी चलने लगता है ।) कडुए मुखन की = कठोर या कटु बातें कहनेवालों की । विषया = विषय-वासना । थिर = स्थिर । शान्त । एक स्थान में ठहरा हुआ । पुरुष पुरातन = (१) विष्णु । (२) बुद्धा भादमी । रोते = खाली । अनरोते = रीते का उल्टा, अर्थात् भरा हुआ । मीर = शतरंज का बादशाह नामक मोहरा । बड़री = बड़ी । विशाल ।

पृ० ४७—ओछे = छोटे । तुच्छ । गुलियाए = बाँस के चोंगे में भर कर जबरदस्ती औषध के रूप में खिलाए या पिलाए जाने पर । घूर = कूड़ाखाना । बतौरी = एक प्रकार का वात रोग जिसमें शरीर पर मांस का गोला सा निकल आता है । सफरिन = सफरी नामक मछलियों से । बकुलनि = बगला नामक पक्षियों के लिए ।

पृ० ४८—मूकनि = मुक़ों से । तपत रसोई = रसोई बनाता । रसोई-दारी करता । जुभार = जुहार । साहब सलामत । अटके काम = काम पड़े । बढ़े = बुझाए जाने पर । पचवत = पचाता है । हजम करता है । साहब = परमेश्वर । मालिक । तीन पैँड़ बसुधा करो = पृथ्वी को तीन कदम या पग में नाप लिया ।

(११).

- पृ० ४९—सेस = शेषनाग। कलार = कलवार। भीरं परै ठहराइ = कष्ट के समय साथ दे। दाग दिवावतु = अपना शरीर दगवाता है। सही होत = ठीक माना जाता है। (मुगलों के समय में सवारों की ठीक ठीक गिनती करने के लिए उनके घोड़ों को दाग देते थे, जिसमें एक ही घोड़े को कई सवार अपना न बता सकें।) गोइ = छिपाकर। अटिलैहैं = अटलावेंगे। शेखी करेंगे।
- पृ० ५०—गाढ़े दिन = कष्ट के दिन। विपत्ति का समय। व्याल-बदन = साँप के मुँह में पड़कर। लटो = बुरी। खराब। गाँस = तीर के फल की तरह चुभनेवाली चीज। गुन = (१) रस्ती। (२) गुण। खूबी। अगुनी = जिसमें अवगुण हो। बुरा। खराब।
- पृ० ५१—खँचत बाय = वायु खींचता अर्थात् साँस लेता है। सरवर = सरोवर। तालाब। संचहिं = संचित करते हैं। एकत्र या इकट्ठा करते हैं।
- पृ० ५२—रंभ = उत्साह। उमंग। विहद = बेहद। बहुत अधिक। गढवरन = हाथियों। पेल = वाढ़। खेलमैल = गड़बड़ी। उपद्रव। खलक = संसार। दुनिया। उसलत = उखड़ता है। तरनि = सूर्य। थारा = थाल। बड़ी थाली। पारावार = समुद्र। सागर। वाने = झंडे। निशान। नग = पहाड़। पर्वत। उकसाने = अपनी जगह से हट गए।
- पृ० ५४—जुत्थ = यूथ। झुंड। जमाति = जमाअत। झुंड। गरोह। दिगम्बर = शिव। महादेव। सिवा = शिवा। पार्वती। भृकुटी चढ़ाई है = क्रुद्ध हुए हैं। गुस्सा किया है। दिलगीर = दुःखी। रंजीदा। तनिया = चोली। तिलक = एक प्रकार का लंबा कुरता। सुथनिया = सूथन। पायजामा। पगनियाँ = जूता। बहियाँ न = विहीन नहीं हुई थीं। अलग नहीं हुई थीं। बालियाँ = बालों की लटें। अलियाँ = अलि का बहुवचन। भौरे। मन्दर = (१) मन्दिर।

(१२)

मकान । (२) पहाड़ । कन्दमूल = (१) मुरब्बा । (२) वनस्पतियों की जड़ और गाँठें आदि । बेर = (१) बार । दफा । (२) बेर नामक फल । भूषण = (१) आभूषण । गहने । (२) भूख के मारे । बिजन = (१) पंखा । (२) अकेली । बिना किसी साथी के । नगन जड़ार्ती = (१) नग या नगीने जड़वाती थीं । (२) नंगी जाड़ा खाती हैं ।

पृ० ५५—सगवग = सकपकाती हुई । घबराई हुई । अनखाती = नाराज होती हैं । घाती = आत्महत्या । अथह = अथाह । बहुत गम्भीर । डोंगा = बड़ी और लंबी नाव । मक्का मिस्रि = मक्के जाने के बहाने से । कियले को ओर = मक्के की जगह; अर्थात् परम पूज्य और माननीय ।

पृ० ५६—गुर्ज-बरदार = एक प्रकार के सिपाही जो गुर्ज या गदा लिए रहते थे । नीति पकरि = कायदे से । नियमपूर्वक । ठठकत = ठिठकता है । रुकता है । गुसलखाने = स्नानागार में । जारिन = हजारि मन्सबदार । गैर-मिस्रिल = नियम के विरुद्ध । अनुचित । गुसीले = गुस्सेवर । क्रोधी । बलकन लाग्यो = क्रुद्ध होने लगा । तमक = क्रोध । गुस्सा । देवल = मन्दिर । देवालय । अली = मुहम्मद साहब के दामाद का नाम । गये लबकी = लपक गये । भाग गये । मारि गये दबकी = दबक कर या छिप बैठे ।

पृ० ५७—सिधार्ई = सिद्धता । सिद्धपन । मसीद = मसजिद । सुनति = मुसलमानों का सुन्नत या खतना नामक संस्कार । साखि = साक्षी । गवाही । बब्बर = बाबर बादशाह । तब्बर = पुत्र । सन्तान । भब की = शिव या विश्वनाथ की । कलमा = मुसलमानों का एक पवित्र और सर्व-प्रधान अरबी वाक्य जिसका उच्चारण करके कोई इस्लाम धर्म में दीक्षित होता है । नेवाज = नमाज । मुसलमानों की ईश्वर-प्रार्थना । दावा = बराबरी । समानता । जेर कीन्ह्यो = अधीन किया । अधिकार में किया । दरबारे से = मुगल दरबार से ।

(१३)

- पृ० ५८—भवास = सकान । घर । बनजारा = देश देश घूम कर व्यापार करनेवाला । अमिष-अहारी = कच्चा मांस खानेवाले, अर्थात् राक्षस । पील = हाथी । कमान = तोप । मुरचान = मोरचों । जोट = समूह । झुंड । झोट = युद्ध । समर । ठट्ट = समूह । झुंड । कुम्भ = हाथी का गंडस्थल । गुमान भारि डारे हैं = घमंड तोड़ दिया है ।
- पृ० ५९—जुमिलाहू = सभी देशों । तरि = पार करके । कूरताई = कूटपन । मूर्खता । जपत = जटत । बलपूर्वक अपने अधिकार में कर लेना । तबल = डंका । नगाड़ा । वेदिल = घबराया हुआ । विकल । रिसालें = रसाले । सेनाएँ । करनालें = तोपें । परनालें = दक्षिण का एक प्राचीन दुर्ग । मयदान मारा = युद्धक्षेत्र में मार डाला । खाक किया = मिट्टी में मिलाया । सालति = सालती है । कष्ट देती है ।
- पृ० ६०—फिरंगाने = फिरंगियों का देश । हदसनि = हदस । डर । हबसाने = हबशियों का देश, एनीसीनिया । बिड़रि = तितर बितर होकर । इधर उधर छितरा कर । दरगाह = दरबार । खरभरी = खलबली । हलचल । परी पुकार = चिल्लाहट मची है ।
- पृ० ६२—परिमल = उत्तम सुगंधि । अच्छी खुशबू । परसि = स्पर्श करके । छूकर । प्रभंजन = वायु । हवा । वरजोरी = जबरदस्ती या अत्याचार करनेवाला । दवागि = दावागि । जंगल की भाग । थलमरु = मरुस्थल । रेगिस्तान । सोम = चन्द्रमा । कला करो = (१) अपनी कलाओं का विस्तार करो । चाँदनी फैलाओ । (२) तरकीब या उपाय करो । चंद्रमणि = एक प्रकार का कल्पित रत्न । कहते हैं कि चन्द्रमा की किरणें पड़ने से यह पसीजता है । तेलिया पखान = एक प्रकार का निकृष्ट और कड़ा पत्थर । टाँकी = पत्थर गढ़ने का

(१४)

एक प्रसिद्ध औजार । चित चेतो = अपने मन में समझो । पयोद = बादल । मेघ । बलाहक = बादल । मेघ ।

पृ० ६३—भ्रमात = इधर उधर घूमता हुआ । रंभा = कदली । केला । लागि = लिए । वास्ते । गुनि = मन में समझ या मानकर । लुवें = गरमी के दिनों में चलनेवाली गरम हवा । लू । जैहैं ताये = तस हो जायेंगे । गरम हो जायेंगे । पाहीं = पास । चहुँ फेरि = चारों ओर । फेरि = फिर । बाद में । केहरी = सिंह । शेर । बल गयो थकाय = शक्ति जाती रही । ताकत न रही । जरा = वृद्धावस्था । बुढ़ापा । जंवुक = शृगाल । सियार । गाजैं = गरजते या चिल्लाते हैं । ससक = खरगोश । मृगराज = सिंह । शेर । नख-रदु = नाखून और दाँत ।

पृ० ६४—सर = शर । तीर । कुन्त = बरछी । भाला । कृपानैं = एक प्रकार की तलवार । तेग = तलवार । जसी = यशस्वी । कीर्तिशाली । भार भख्यो = बोझ लादा । तरी = नाव । नौका । जरजरी = जर्जर । पुराना । टूटा फूटा । पौन भुकोरै = हवा बड़े बड़े झोंके देती है । आरत = आर्त । दुःखी । पीड़ित । कला जिन निज संभारो = जिन्होंने अपनी कला का विस्तार किया है । बिजोय = रखवाली करो । रक्षा करो । नतु = नहीं तो । पोत = लगान या मालगुजारी । पाछी = पिछली । आछी = अच्छी । पथी = पथिक । यात्री । रंक = दरिद्र । गरीब । मुद = मोद । आनन्द ।

पृ० ६५—तरनी = नाव । नौका । नदिया नाव सँजोग = अकस्मात् कभी कभी होनेवाला संयोग या मिलाप । गैल = मार्ग । रास्ता । ग्राहैं = ग्राह नामक जलजन्तु । तीक्ष्ण = तीक्ष्ण । तेज । खेवनहार = (१) नाव खेनेवाला । माझी । (२) ईश्वर । पथी = यात्री । मुसाफिर । बाय = फैलाए हुए । राही = यात्री । मुसाफिर ।

(१५)

चीन्हत = पहचानता है । पाय पिराय गे = पैर दुखने लगे । पैरों में दर्द होने लगा ।

पृ० ६६—सामीप = समीप । पास । हारे = थके हुए । अखारो = अखाड़ा । बहुत से जलजन्तुओं का स्थान । पौन प्रचारो = तेज हवा चल रही है । पाहि पाहि = रक्षा करो ।

पृ० ६८—तरनि = सूर्य । तरनि-तनूजा = यमुना । मुकुर = आड़ना । बीशा । उभकि = उचककर । प्रनवत = नमस्कार करते हैं । फल लोभा = फल के लालच से । नै रहै = झुके हुए हैं । अनल = स्वच्छ । सुन्दर । सैवालन = सेवारों में । कुमुदिनी = कोई । गोभा = लहर । तरंग । ढिग = पास । समीप । उपचार = सामग्री । सामान । उपमान = वह वस्तु जिसके साथ किसी की उपमा दी जाय । मिस = बहाने से । बगरे फिरत = फूले फूले फिरते हैं । सतधा = सैकड़ों तरह से । राका = पूर्णिमा की चाँदनी रात । अवनी = पृथ्वी ।

पृ० ६९—ओभा = कान्ति । छबि । जुड़ात = शीतल या सुखी होते हैं । अरुबर = आकाश । आस्मान । लोल = हिलती या लहराती हुई । रास रमन में = रास करते समय । दुरि भाजत = छिपकर भागता है । गवन = हिलना । संचार । चलना । गुड़ी = गुड़ी । पतंग । अवगाहत = देखती भालती । ठगन = ठगने या धोखा देने के लिए । कालिन्दी = यमुना । रजत = चाँदी । चकई = एक प्रकार का गोल खिलौना जिसे लड़के फिराते हैं । उच्छुरत = उछलती है । निसिपति = चन्द्रमा । मल्ल = पहलवान ।

पृ० ७०—कूजत = (पक्षी) शब्द करते हैं । कलहंस = राजहंस नामक बड़ा पक्षी । मज्जत = मज्जन करता है । स्नान करता है । कारंडव = एक प्रकार का हंस या बत्तख । जल-कुक्कुट = मुरगाबी नामक जल-पक्षी । चक्रवाक = चकवा पक्षी । बक = बगला

(१६)

पक्षी । पाँवड़े = वह कपड़ा आदि जिस पर पैर रखा या पोंछा जाता है । बगराये = फैलाये या छितराये हुए । मुक्त माँग सोभित भरी = मोतियों में भरी हुई सुन्दर माँग । चिकुरनि = बालों को । पलोटना = दबाना । नीलमनि = नीलम पत्थर या रत्न । सैल = शैल । पर्वत । आतप = सूर्य का प्रकाश । धूप ।

पृ० ७१—सुख सिरजौई नाहि = सुख की सृष्टि ही नहीं हुई है । अर्थात् इनके लिए कभी कहीं सुख है ही नहीं । उधरी = खुली । आवरण-रहित । नयन भरि लखें = आँख भर कर देखें । एक बार अच्छी तरह देखें । नियाव = न्याव । उचित कार्य । कीनो भलो बनाव = अच्छा नियम बनाया है । खूब व्यवस्था की है । निवेख्यो = निपटारा किया है । काम किया है । अन्तरजामी = अन्तर्यामी । मन की बात जाननेवाला । जाँचौ = दंड दो । सजा दो । रीझन = रीझने या प्रसन्न होने की क्रिया । उधारी = उधार कानेवाले । भायो = भाया । पसन्द आया । कौस्तुभ = श्रीकृष्ण के द्वार का मणि या रत्न । गुंजा-हार = घुँघचियों की माला ।

पृ० ७२—पखौआ = पंख । पर । फँट कसी = फँटा बाँधा । कमर कसी । उद्यत हुए । टैटी = एक प्रकार का जंगली फल । हलकत = हिलती हुई । चक्रादिकन = सुदर्शचक्र आदि । सान दै राखो = चोखा या तेज कर रखो । परिकर = कमरबन्द । पटका । बाने जुगओ नीके = अच्छे अच्छे सामान कर रखो । पूरी तैयारी कर रखो । असि = तलवार । प्रबोधो = सन्तुष्ट करने के अभिप्राय से कहो । पतियावै = विश्वास करे । एतबार करे । इनारुन = इनारू या इन्द्रायन का फल जो ऊपर से देखने में तो बहुत सुन्दर होता है, पर अन्दर से कहुआ जहर होता है । कदली बन = केले के पेड़ों का जंगल ।

पृ० ७३—भागनि सों = सौभाग्य से । खुशकिस्मती से । नसाये =

(१७)

दूर किए। भगाए। विरचि = रचना करके। बनाकर। वरनहुँ =
वर्णों या अक्षरों में। भाषत = बोलता है। खपुष्प = आकाश-
कुसुम। अनहोनी चीज। हरि = हरण करके। छीनकर। पैठारे =
प्रविष्ट किया। घुसाया।

पृ० ७५—वरनन = वर्णों या अक्षरों में। विचच्छन = विचक्षण। बुद्धि-
मान। सूजा = बड़ी सूई। बखिया = एक प्रकार की बढ़िया सिलाई।
कसवी = वेइया। तलवी = तलब। माँग। तसिलदार = तह-
सीलदार। सक्कै गनार्ई = गिना सके। गिनती करा सके।

पृ० ७६—जेर = फारसी लिपि में इकार या एकार की मात्रा का चिह्न।
जबर = फारसी लिपि में अक्षर की मात्रा का चिह्न। पेस = (शुद्ध
रूप पेश) फारसी लिपि में उकार की मात्रा का चिह्न। जालियन =
जालियों के लिए। जालसाजों या जाल बनानेवालों के लिए।
साँसति = कठोर कष्ट। अयानी = अज्ञान। अनजान। कुटोन =
कुटियों में। सिच्छा = शिक्षा।

पृ० ७७—पीन = मोटा। स्थूल। अलका = कुवेर की पुरी। अमरा-
वती = इन्द्र की पुरी। खिसानी = लजित हुई। सूर = सूर्य।
उयो = उगा। उदित हुआ। बिनसि = विनष्ट हुई। बरबाद हुई।
विलानी = न रह गई। जाती रही। तुन समभत = तृणवत्
समझते थे। तुच्छ समझते थे। कोटिपती = करोड़पति। बहुत
बड़ा धनवान। ऐँडत = ऐँठते थे। घमंड करते थे। अघानी =
अघा जाते हैं। भर पेट खाकर तृप्त होते हैं। खोटानी = कम
हुई। घटी।

पृ० ७८—प्रनमत = प्रणाम करता है। नमस्कार करता है। सहमि =
डर कर। भयभीत होकर। सकानी = संकुचित हुई। धन-धानी =
धन और धान्य।

पृ० ८०—वैतरनी = वैतरणी नाम की कल्पित नदी जिसे मरने पर

(१८)

जीवात्मा को यमलोक जाते समय पार करना पड़ता है ।
 मनइन = मनुष्य । आदमी । गाइन = गौओं । रछ्या = रक्षा ।
 हिफाजत । थवार = थोड़ा । कम । रोसैयाँ = रसोई । पाकशाला ।
 रक्त के आँसन = रक्त के आँसू । बहुत अधिक विलाप । माथे-
 पटकि दुहत्था हाथ = दोनों हाथों से सिर पीटकर । दुहत्थड़
 मार कर । गुहार = दीनतापूर्ण पुकार । कम्पू = सैनिकों के रहने
 का स्थान । कैम्प । छावनी । महतारी = माता । माँ । बिथा =
 व्यथा । पीड़ा । अनारी = अनाड़ी । मूर्ख । सगरे = समस्त । कुल ।

पृ० ८२—कंचन बरसत = सोना बरसता था । धन-सम्पत्ति की
 बहूत अधिकता थी । चून = आटा । मेलि = मिलाकर । रिन
 भारन = ऋण या कर्ज के बोझ से । दुचिताई = मन का दो तरफ
 लगा रहना । चिन्तित रहना । छूँछै = खाली । रिक्त ।

पृ० ८३—अनुशासन = शासन । राज्यप्रबन्ध । पथ गहहीं = रास्ता
 लेते हैं । चलते हैं । सेत कृष्ण कृति = अच्छे और बुरे काम ।
 कुजोग = खराब या अनुचित बात । निहल्लल = छल-रहित ।
 निष्कपट । सपच्छु = जिसके पक्ष में कोई बलवान हो । लाहू =
 लाभ । प्राप्ति । इकट = एकट । कानून । सिर बेचन = सिर
 बेचने के लिए । प्राण देने के लिए ।

पृ० ८४—कोरे बचि जाहीं = कोरे बच जाते हैं । कुछ भी दंड नहीं
 पाते । लकुट = छोटी लकड़ी । छड़ी ।

पृ० ८५—पलटति = बदलती है । अम्बुसर = पानी का झरना ।
 मुकुर = शीशा । सुठि = सुन्दर । चित्तरसारी = चित्रशाला ।
 मद सनि = मद से भर कर या मत्त होकर । गहवर = गुफा ।
 कंदरा । किंकरता = दासता । सेवा । तुहिन = तुपार । बरफ ।
 छई = छाई । चारों ओर फैली ।

पृ० ८६—मौलि = शिखर । ऊँची चोटी । सेली = दुपट्टा या कपड़ा ।

स्रैनि = श्रेणी । खौरि = एक प्रकार का तिलक । खौर ।
 वितस्ता = काश्मीर और पंजाब की झेलम नामक नदी । अद्रि =
 पहाड़ । पर्वत । द्रोनाकार = दोने या कटोरे के आकार का ।
 निकार्ई = सुन्दरता । बाजीगर = कौतुक या तमाशे करनेवाला ।
 रस-रेलि = आमोद-प्रमोद । रंग-रलियाँ । ऐँचि = खींचकर ।

पृ० ८९—धाता = विधाता । ब्रह्मा । स्यन्दन = रथ । नन्दन =
 इंद्र की वाटिका । पटी-रहित = बिना परदे की । जिसके सामने
 से परदा उठ गया हो । दिखटी = कोई चीज रखने का काठ का
 आधार । पेखी = देखी । भौन = भवन । मन्दिर ।

पृ० ९०—सुरकानन = देवताओं की वाटिका । पुरन्दर = इन्द्र ।
 सुख-सवनि = सुख देनेवाली । सुखदायक । सहसानन—शेष
 नाग । ऐनु = अयन । घर ।

पृ० ९३—नवाइ सीस = सिर झुकाकर । नमस्कार करके । अवनीस =
 राजा । अगुआई = भागे बढ़ कर । अगवानी करने के लिए ।
 पछियाए = पीछा करते हुए । गाज = वज्र । बिजली । पुहुमि =
 पृथ्वी । फलंगति = फलौंग मारती है । उछलती है । उमहत =
 उमगती है । भागे बढ़ती है । फुही = फुहार । छोटी छोटी वृद्धों का
 पढ़ना । फाव = फव्वना । शोभा । वपुष = शरीर ।

पृ० ९४—गवना = गमन करती है । जाती है । सफरिनि = सफरी
 नामक मछलियों को । उमाहि = ऊपर बठाकर । जच्छ = यक्ष ।
 अंग बहु भावनि बोरे = अनेक प्रकार से उसमें अपने अंग
 डुबाए या स्नान किया । परे जमाए = कतार बाँधे हुए । पंक्ति-
 बद्ध । चाय = चाव । इच्छा । बाढ़ = किनारा । तट । भाई = वह
 चक्र जो ऊँचे स्थान पर खड़े होकर नीचे की ओर देखने से आता
 है । भुलमुलाइ = इधर उधर झोंका खाकर । ढिठाई = ढीठपना
 करके । धृष्टता करके । सुधा.....वदत = सुधा या अमृत के स्वाद

को भी उसके स्वाद के सामने तुच्छ ठहराता है । आचम्य =
आचमन करके । पान करके ।

पृ० ९५—पछेलत = पीछे की ओर हटाता या ढकेलता है । पूर = बाढ़ ।
पानी का तेज बहाव । ठावत = उपस्थित करता है । तिरत = तैरता
है । चुभकी = डुबकी । गोता । अच्छरिनि = अप्सराओं को ।
मुक्कालि = मोतियों की पंक्ति या माला ।

पृ० ९६—सुमुखि = सुन्दर मुखवाली । सुन्दरी । ढोकनि ढेला
करति = पत्थर के बड़े बड़े टुकड़ों के बहुत छोटे छोटे टुकड़े कर देती
है । जोन्ह = जुन्हाई । चन्द्रमा की चाँदनी । जूहनि = यूथों को ।
समूहों को ।

पृ० ९७—सित पच्छ = मास का शुक्ल पक्ष । दसहरा = जेठ सुदी
दशमी जिस दिन गंगा जी इस पृथ्वी पर आई थीं । लुगाई = खी ।
औरत । तारत = तारते हैं । उद्धार करते हैं । अघाइ = परम वृक्ष
होकर । अन्हात = नहाता है । स्नान करता है । खाँचत = जमाता
है । अंकित करता है । जाँचत = जाँच या परखता है ।

पृ० ९९—पानिय = आब । चमक । बिचलावत = विचलित करता है ।
नैकुँ = थोड़ा सा । जरा सा । संजीवन मूरि = संजीवनी वृद्धी
जिसके खाने से मनुष्य अमर हो जाता है । धनंतर = धन्वन्तरि
जो देवताओं के सबसे बड़े वैद्य हैं ।

पृ० ९९—बपु = शरीर । बदन । कलधौत = चाँदी । छुरी = छड़ी ।
सफरी = एक प्रकार की मछली । मीनकेतु = कामदेव । निज-
केतु-मीन = स्वयं अपनी पताका पर की मछलियों को । तिरत =
तिरता है । पानी के ऊपर आता है । चन्दबाहन = चन्द्रमा के
रथ के सफेद घोड़े । अगवानो = आते हुए व्यक्ति के आदर के लिए
आगे बढ़कर उससे मिलना । स्वागत ।

पृ० १०३—सानु = पहाड़ की चोटी । वियत = आकाश । आस्मान ।

(२१)

फणिनी = नाग की मादा । नागिन । समा = समान । तुल्य ।
रसा = पृथ्वी ।

पृ० १०४—हरीतिमा = हरियाली । वन-मेदिनी = वन की भूमि ।
मंजुता = सुन्दरता । भेक = मेंढक ।

पृ० १०५—बसुमति = पृथ्वी । बीर-बधूटी = बरसात में होनेवाले
एक प्रकार के सुन्दर लाल छोटे कीड़े । फलिता = फलों से लदी या
फली हुई । पुष्पिता = फूलों से युक्त । फूली हुई । प्रतिपत्ती =
प्रतिष्ठा । गौरव । पयोद = मेघ । बादल । ब्रज-धरा = ब्रजभूमि ।
ब्रज-विभूषण = श्रीकृष्ण । भुजपोत = भुजा या बाहु रूपी जहाज ।

पृ० १०६—प्रभञ्जन = बहुत तेज हवा । आँधी । मसी = लिखने की
स्याही । अशनि-पात = वज्र या बिजली गिरना । विभोषण =
बहुत अधिक भीषण । जलद = बादल । तोयधि = समुद्र । सागर ।
निबिड = घोर । घना । नीरद = बादल । मेघ । असितता =
कालिमा । अन्धकार । प्रतीति = विश्वास ।

पृ० १०७—असह = न सह सकने योग्य । असह्य । पवि-कर्ण = वज्र
के समान मजबूत कान । तमोमय = अन्धकारपूर्ण । घोर अँधेरा ।
असितता-खनि = अन्धकार या कालिमा की खान । भाद्र-कुहू =
भादों मास की अमावस्या । अजस्र = परम प्रबल । क्षणप्रभा =
बिजली । वज्र ।

पृ० १०८—ब्रजमेदिनी = ब्रज की भूमि । सपुर-ग्राम = गाँव और
नगर सभी । रविजा = यमुना ।

पृ० ११०—पार्थ = अर्जुन । धर्मराजार्जुन = धर्मराज और अर्जुन ।
धर्मार्थ = धर्म और अर्थ । निष्प्रभ = जिसमें प्रभा या कान्ति न
हो । गजराज = हाथी । शौर्य = शूरता । बहादुरी ।

पृ० १११—शृगाल = गीदड़ । पेशी = माँस की बोटी । बिहग =
पक्षी । चिड़िया । गृद्ध = गिद्ध नामक पक्षी । मींचते = बन्द करते

हैं । रथ-हयों को = रथ खींचनेवाले घोड़ों को । सौख्य = सुख का भाव । आराम । कीच = कीचड़ । रुण्ड = वह धड़ जिसका सिर कट गया हो । मुण्ड = धड़ से कट कर अलग पड़ा हुआ सिर । प्रकटो = प्रकट हुई ।

पृ० ११२—सुरराज = देवताओं का राजा, इन्द्र । धनंजय = इंद्र ।
 पृ० ११३—मायावी = माया की सहायता से दूसरों को धोखा देने-वाला । छली = छल या कपट करनेवाला । पूर्णन्दु = पूर्णिमा का पूरा चन्द्रमा । गयन्द = हाथी । बुध = बुद्धिमान । समक्षदार । स्वभू = वह जो स्वयं ही उत्पन्न हुआ हो । स्वयंभू ।

पृ० ११४—ताप = कष्ट या चिन्ता आदि । धरोहर = वह चीज जो किसी के पास कुछ समय तक यों ही रक्षा के लिए रख दी जाय । अमानत । चराचर नाथ = चर और अचर या स्थावर और जंगम सब के स्वामी । परमेश्वर । विश्वेश = सारे विश्व का स्वामी । परमेश्वर ।

पृ० ११५—देवदेव = सब देवताओं के स्वामी । ईश्वर । हेतु = वह जो स्वयं कोई कार्य न करता हो, बल्कि किसी दूसरे की प्रेरणा से द्वार मात्र बनकर, कार्य करता हो । निरीह = जिससे किसी को कोई कष्ट न पहुँच सके । सन्तत = सदा । बराबर । प्रेमवश्य = वह जो प्रेम के वश में हो । आराध्य = वह जिसकी आराधना की जाय । साध्य = जिसके लिए साधना की जाय ।

पृ० ११६—नित्य = वह जो सदा बना रहे, कभी नष्ट न हो । परात्पर = वह जिससे आगे या बढ़ कर और कोई दूसरा न हो । सर्वश्रेष्ठ । धेय = वह जिसका ध्यान किया जाय । गेय = वह जिसके गुणों का गान किया जाय । अजेय = वह जिसे कोई जीत न सके । अचिन्त्य = वह जिसका ठीक ठीक चिन्तन या विचार न हो सके । आत्मभू = वह जो स्वयं उत्पन्न हुआ हो । स्वयंभू । अखिलेश =

(२३)

सब का स्वामी । भर्त्ता = भरण-पोषण करनेवाला । हर्त्ता = हरण करनेवाला । शाश्वत = सदा बना रहनेवाला । विश्व-वन्द्य = वह जिसकी वन्दना सारा विश्व करता हो ।

पृ० ११७—अचेत-समान = बेहोश की तरह । सुकृत = सुन्दर या उत्तम कार्य्य । त्रैलोक्य = स्वर्ग, मर्त्य और पाताल ये तीनों लोक । क्षमार्थना = क्षमा किए जाने के लिए प्रार्थना । क्षमा-प्रार्थना ।

पृ० ११९-१२७—कुमुदिनी-नाथ = चंद्रमा, जिसके उदय होने पर कुमुदिनी खिल उठती है । मंदाकिनी = एक नदी जो चित्रकूट के पास बहती है । रत्नाकर = समुद्र । स्फटिक = बिलौरी काँच । वैदेही = विदेहराज की पुत्री, सीता । चंद्रातप = शामियाना । स्वर्गंगा का कमल = सीता का सुँह । सुँह की उपमा बहुधा कमल से दी जाती है । नील मधुप = रामचंद्र । रामचंद्र का वर्ण भी नीला माना जाता है । और वे स्वभावतः सीता के मुख-कमल के रस लेने वाले अमर हैं । मलयानिल = सुगंधित पवन । पुलकित = रोमांचित । सैन्य चतुरंग = पदाति, घोड़े, हाथी और रथ सेना के चार अंग होते थे । प्रारब्ध = भाग्य । उपल खंड = शिला । रजलिप्त = पराग से सना हुआ । आकंठ-मज्जित = गले तक डूबी हुई । हेमाभ = सोने की कांति वाली । उन्निद्र = उनींदे । संचारिणी = चलानेवाली । सुकृत-फल = पुण्य के फल । सौमित्र = सुमित्रा के लड़के लक्ष्मण । जलद-जाल = बादलों का समूह । उत्पात = उपद्रव । कुत्सित = बुरा, निंदनीय । प्रमाद = भ्रांति, भूल । नील कमल = नीले कमल के समान रामचंद्र का मुख । मकरंद-बिंदु = पुष्प-रस की बूँदें, यहाँ पर प्रेम के आँसू ।

पृ० १२८—अम्लान = जिस पर मैल न हो । स्वच्छ । साफ । सम्मोहन = मोहित करनेवाला । सुषमा = बहुत अधिक सुन्दरता या शोभा ।

पनघट = वह घाट जहाँ लोग पानी भरते हैं । तप्त = तपा हुआ ।
 तृषित = जिसे तृषा लगी हो । प्यासा । उत्कंठित = जिसके
 मन में उत्कंठा हो । विरह-विधुर = विरह के दुःख से दुखी ।
 श्रुति = कान । सुनने की इन्द्रिय । अलस = आलस्य से भरी हुई ।
 अलसाई हुई । प्रेयसी = जिसके साथ प्रेम किया जाय । प्रेमिका ।
 निर्निमेष = जिसमें पलकें न गिरें । एकटक । पुलक = शरीर के
 रोओं का खड़ा होना । रोमांच ।

पृ० १२९—निखिल = समस्त । पूरा । वोहित = बड़ी नाव । जहाज ।
 फेनिल = जिसके ऊपर बहुत सा फेन या गाज हो । स्वप्निल =
 स्वप्न लानेवाला । स्मिति = मुस्कराहट । निर्मम = जिसे किसी
 की ममता न हो । निर्मोही । संसृति = संसार ।

पृ० १३०—प्रियमाण = प्रिय । प्यारा । मदिर = नशा लानेवाला ।
 मादक । अवसाद = विपाद । रंज । दुःख । सन्तप्त = जिसे सन्ताप
 हुआ हो । हृत्तल = हृदय का तल ।

पृ० १३२-१३३—मुखरित = शब्दायमान, गुंजायमान । जीर्ण = बूढ़े ।
 विषण्ण = विपाद पूर्ण । सायास = प्रयत्नपूर्वक । शिल्पि
 सुजात = अच्छे कुल में उत्पन्न हुआ शिल्पकार । सहज स्पंदित
 कर जग के प्राण = जगत के प्राणों में स्वाभाविक धड़कन भर
 कर, अर्थात् जगत् में जीवन के लक्षणों को व्यक्त कर । मादक =
 नशीली । स्वप्निल = स्वप्न के समान अस्पष्ट । स्वर्ण = यहाँ पर,
 सौंदर्य । फुल्ल = फूल उठा । शतमुख गान = सैकड़ों मुख से
 निकलनेवाला गान । निभृत = विनम्र, (छोटे से) आक्रीड़ =
 क्रीड़ा का स्थल ।

पृ० १३३-१३५—स्तब्ध = जड़, गतिहीन । विश्व की.....स्वप्न
 अजान = जब संसार के लोग निद्रा में पड़े हुए स्वप्न देखते रहते हैं ।
 भीमाकाश = डरावना आकाश । तमसाकार = तमस् (तमोगुण

(२५)

अथवा अन्धकार) का रूप धारण कर । दीर्घ.....निश्वास = आँधी चलती है । प्रखर.....धार = जब मूसलधार वर्षा होती है । तपक तड़ित में = बिजली में चमक कर । इंगित = इशारा । मधुमास = चैत्र, वसंत के आरम्भ का महीना । यौवन-भार = वसंत में जीवन उत्साहपूर्ण रहता है, प्रकृति का सौंदर्य निखर जाता है, इसी से उस समय वसुधा पर यौवन का भार होना कहा गया है । विधुर-दुखी = घबराया हुआ । सोच्छ्वास = सुगंधि को फूलों की आह माना है । सौरभ = सुगंधि । लुब्ध = जिनमें खूब हलचल मची हो । जल-शिखर = ऊँची २ लहरें । विथुरा = फैला देता है । बुलबुलों का = बुदबुदों का । स्वर्ण = सौंदर्य; प्रभात काल में सूर्य की किरणें सुनहली लगती हैं । भोर = प्रानः-काल । मिला.....छोर = अपने जाने से । अलस-पलक-दल = सुवह जागते वक्त आँखें अलसाईं सी रहती हैं । तुमुल = घने । भीरु = डरपोक । तंद्रा = वह अवस्था जिसमें निद्रा तो नहीं रहती पर आलस्य के कारण उठने का जी नहीं चाहता । खद्योत = जुगनू । कनक छाया में = प्रभात काल के सुनहरे प्रकाश में । सकाल = सबेरे । सुवर्णअवसान = सुनहली संध्या । जुड़ाता = शीतल करता हूँ । आकुल = व्याकुल । छाया-जग = जिसका वास्तविक अस्तित्व नहीं है । फूँक.....गान = मुरली के छेदों में गान फूँक देते हो । मेरे हृदय में से कविता की ध्वनि निकाल लेते हो ।

पृ० १३६-१३८—जगत्प्राण = वायु जो जगत् का प्राण है । मेघदूत = महाकवि कालिदास का एक काव्य जिसमें एक विरही यक्ष अपनी प्रियतमा के पास मेघ को दूत बनाकर संदेश भेजता है । शिखी = मयूर । नृत्य = नृत्य के कारण । स्वाति = स्वाति नक्षत्र को मेघ का जलबिन्दु यदि सीप में पड़ जाय तो मोती बन जाता है । कृषक इ० = कृषक वाला को मेघ देखकर अत्यंत आनन्द होता है । दिन-

कर = सूर्य । चल = चंचल । विपुल इ० = त्रिभुवन की विपुल कल्पना के समान हम । अनंत = अनंत आकाश । मत्त मतंगज = मत्त हाथी बने हुए । सजग शशक = चौकन्ने खरगोश बने हुए । सीपके = सीप जैसे उज्ज्वल । समुद = सानंद । कर = किरणें । उपल = ओले । रजत-कर = चाँदी जैसे उज्ज्वल हाथ । दमयंती, स्वर्ण-हंस = स्वर्णरंगी हंस ने दमयंती को नल का संदेश सुनाया था । तमाल-तम इ० = अंधकाररूपी तमाल वृक्ष के पत्तों के समान । बाल-हंस = प्रातःकालीन सूर्य । स्वर्णपंख = प्रातःकालीन सूर्य की ललाई से रंजित अतः सोने के सेरंगवाले होकर । अछोर = छोर रहित, अंत रहित । निशिभोर = रात और प्रभात में । घोष-भरे = शब्द करते हुए । विभव-भय = राज्यक्रांति से जनित भय जो शीघ्र चारों ओर प्रसरित हो जाता है । काल चक्र = जो सदा नीचे ऊपर आता जाता रहता है । जलधर = मेघ रूप में । जल-धार = जल की धारा के रूप में, बरसने लगते हैं । हवा में महल बनाकर (१) वायुमंडल में बादल अनेक महलों की सी आकृतियाँ बना लेते हैं । (२) बड़े बड़े मनोरथ बाँधते हुए । विभव-भूति से = वैभव संपत्ति के तुल्य ।

पृ० १४०—नेक = जरा । थोड़ा । मन-भाते = मन को अच्छा लगने-वाले । मनोहर । टेरेते हैं = पुकारते हैं । आवाज देते हैं । उर-कलियों में = हृदय रूपी कलियों में । व्याप्त = समाया हुआ । अनायास = अचानक और आप से आप । वृंदा-विपिन = वृंदावन । ठौर = जगह । स्थान ।

पृ० १४१—कलित = सुन्दर । मनोहर । कलिंदजा = यमुना नदी । दुकूल = कपड़ा । वस्त्र । रसाल = रस-भरी । मराल = हंस । हेर हेर के = ढूँढ़ ढूँढ़ कर ।

(२७)

- पृ० १४२—लोचनाभिराम = नेत्रों को सुख देनेवाले । सुन्दर :
गिरिराज = व्रज का गोवर्धन पर्वत ।
- पृ० १४३—हुमाली = वृक्षों की पंक्ति । शुक्र = तोता नामक पक्षी ।
सूआ । सारिका = मैना पक्षी । सलिल = जल । पानी ।
- पृ० १४४—अतीव = बहुत अधिक । मतिमान = बुद्धिमान् । समक्षदार ।
वज्रनिपात = (१) आकाश से वज्र या विजली गिरना । (२)
बहुत बड़ी विपत्ति आ पड़ना । साह्लाद = आह्लाद या प्रसन्नता-
पूर्वक । खुशी से ।
- पृ० १४५—संस्थान = रहने की जगह । निवास-स्थान । अज्ञ = वह
जो कुछ भी न जानता हो । नादान । मूर्ख । भान = थोड़ा या
सूक्ष्म ज्ञान । कृतार्थ = वह जिसका परिश्रम सफल हो गया
हो । कृतकृत्य ।
- पृ० १४७—आले में = दीवार में बने हुए ताल में । प्रणयो = जिसके
साथ प्रणय या प्रेम किया जाय । प्रेमिका । क्रन्दन = रोना । कोरकर =
खोदकर अंकित करते हुए । क्षणभंगुरता = बहुत शीघ्र नष्ट हो
जाने का भाव । लोलुपता = लोलुप या परम अभिलषित होने का
भाव । मुग्धा = सरल स्वभाव की युवती स्त्री ।
- पृ० १४८—तारापति = चन्द्रमा । चिबुक = ठोड़ी । वारता था =
निछावर करता था ।
- पृ० १४९—निखरती थी = और अधिक शोभा को प्राप्त होती थी ।
विशेष सुन्दर होती थी । अलसाती थी = आलस्य करती थी ।
पर-पद-दलित = दूसरों या परायों के पैरों से रौंदा हुआ ।
भावुक = जिसके हृदय में कोमल भावों का सहज में संचार हो सके ।
- पृ० १५०—नश्वर = नष्ट हो जानेवाला । सदा न रहनेवाला । खङ्गर =
संग्राम । युद्ध । जगा दे फिर किस्मत सोई = मन्द भाग्य को
फिर से अच्छा कर दे । सत्वर = शीघ्र । जल्दी ।

- पृ० १५३—कान्त = सुन्दर । लोभित = लुभाया हुआ । मोहित ।
अघो = पापी । सिक्त = सींचा हुआ । तर । अनुसरणीया =
अनुसरण या अनुकरण करने के योग्य । सरणि = रास्ता । मार्ग ।
तरणि = नौका । नाव । राकापति = चन्द्रमा । मृगराज = सिंह ।
शेर । खगराज = गरुड़ ।
- पृ० १५४—महत्तम = सबसे बड़े । सबसे श्रेष्ठ । श्रीपति = (१) विष्णु ।
नारायण । (२) श्रीकृष्ण । निर्माता = निर्माण करनेवाले ।
बनानेवाले । ज्ञाता = रक्षा करनेवाले । अहिपति = शेषनाग ।
वज्रायुध = वज्र रूपी अस्त्र ।
- पृ० १५५—प्रथित = प्रसिद्ध । मशहूर । वरोक्ति = श्रेष्ठ या उत्तम
उक्ति । यमक = ऐसी शब्द-योजना जिसमें प्रायः एक ही प्रकार के
शब्द या अक्षर बार बार आवें । यह एक प्रकार का शब्दालंकार है ।
त्रयी ग्रन्थ = ऐसा प्रसिद्ध है कि दंडी ने तीन ग्रन्थ लिखे थे,
जिनमें से दशकुमार चरित और काव्यादर्श तो आजकल मिलते हैं,
पर तीसरा ग्रन्थ नहीं मिलता । त्रयी वेद = ऋक्, यजु और साम ।
(कहते कि आरम्भ में यही तीनों वेद थे । चौथा अथर्व पीछे का
है ।) साष्ठव = सुन्दरता । उत्तमता ।
- पृ० १५६—श्लेष = वह शब्द या वाक्य जिसके दो या अधिक अर्थ होते
हों । हृद्य = हृदय में स्थान देने या रखने के योग्य । विभु = ईश्वर ।
परमात्मा ।
- पृ० १५७—भवदुक्ति = आपकी उक्ति या कथन । महीतल = पृथ्वी-
तल । आत्म-काठिन्य = अपनी कठिनता या कठोरता । अभिव्यक्त =
प्रकट । स्पष्ट या खुला हुआ । त्यक्त = जिसका त्याग कर दिया गया
हो । छोड़ा हुआ । संसृति = संसार । जगत । निहित = छिपा
हुआ । संवलित = भली भाँति मिला हुआ । युक्त । लोकोत्तर =
जैसा इस लोक में कहीं न मिलता हो । अलौकिक । बहुत उत्तम ।

(२६)

- पृ० १५८—भीष्म = बहुत बड़ा । विशाल । देवव्रत = (१) देवताओं के समान व्रत और आचरणवाले । (२) भीष्म का पहला नाम । अचलों से भी अचल = पहाड़ों से भी बढ़कर अपने स्थान या प्रतिज्ञा पर अड़े रहनेवाले । कामानल = कामवासना रूपी अग्नि । दासराज = वसुराज नामक धीवर या मल्लाह जिसकी कन्या के साथ भीष्म के पिता शान्तनु ने विवाह किया था । स्वत्व = अधिकार । अव = संसार ।
- पृ० १५९—इच्छा-मृत्यु = ऐसी मृत्यु जो अपनी इच्छा से रोकी और बुलाई जा सके । तथा = उसी प्रकार ।
- पृ० १६०—द्रुपद-सुता = द्रौपदी । कौन काल के गाल पड़ेगा = कौन अपने प्राण देने को तैयार होगा । व्यंग-वचन = ताने के तौर पर कही हुई या मर्मान्तक बात ।
- पृ० १६१—मद चूर्ण करना = जिस विषय में किसी को अभिमान हो, उस विषय में उसे नीचा दिखाना । शर = तीर । फूले अंग = प्रसन्नता से । रथी = रथ पर सवार होकर युद्ध करनेवाला योद्धा । भीत = डरा हुआ । प्रशंसित = जिसकी प्रशंसा की जाय । बदन = मुख । कपीश्वर = हनुमान ।
- पृ० १६२—पंज = प्रतिज्ञा । लेखा = गिनती । सस्मित = हँसते हुए । क्षात्र-धर्म = क्षत्रियों का धर्म । युद्ध और वीरता । जितेंद्रिय = जिसने अपनी इन्द्रियों को जीत लिया हो । उपधान = बिछौना । धवलित = उज्ज्वल ।
- पृ० १६३—बिके न थे.....कर = यदि आप दुर्योधन के आज्ञा-नुवर्ती दास नहीं हो गए थे । अपवाद = बदनामी । पर = पराया । गैर ।
- पृ० १६४—नोन का बदला = किसी के खाए हुए अन्न का बदला ।

(३०)

अपयश = बदनामी । कलंक । नोन खाना = किसी का दिया हुआ अन्न खाना ।

पृ० १६५—निस्पृह = जिसके मन में किसी प्रकार का लोभ या मोह आदि न हो । एकाकी = अकेला । भीति = डर । भय । इष्ट = जिसकी इच्छा या कामना की जाय ।

पृ० १६७-१७४—सांदीपनि=सांदीपनि ऋषि जो कृष्ण और सुदामा के गुरु थे । सिद्धि करो=प्रस्थान करो (मुहावरा) । तिहूँपन=वाल, युवा और वृद्ध ये तीनों अवस्थाओं में । कोदों=सवाँ, दो निकृष्ट अन्न । कनावड़ो=गुलाम । जक लगना=बारबार एक ही बात कहना । बक=बकवाद । लढ़ा=गाड़ी । छानी=छप्पर । पित्रई=पितर । अगत्रई=पहले ही से । खूंट=कोना, छोर । बाली=अनाज की बाल । बूट=हरा चना । आहि=है । लटो=जीर्णशीर्ण । सामा=सामान । दुख सानै=दुखी हो । चाँपिरहे=दवाये हो । गुरुमातु=गुरुकी पत्नी जिसे शिष्य माता कहते हैं । भीने=सने हुए । अछोट=छोट नहीं बड़ी । दाख=द्राक्षा । न चाखत=नहीं खाते हैं । कमला=लक्ष्मी, यहाँ रुक्मिणी । दुई-लोक-बिहारी=दो लोकों का स्वामी । पठवनि=विदा करने का ढंग । ओड़त=फैलाते । सकेलि=बटोर कर । संभ्रम = भ्राँति । कैधों = यातो । मझायो = छान डाला । पूछि भे=पूछ चुके । चौपर=चतुष्पथ बाजार । प्यादे=सिपाही । जोर=आधिक्य । तोरहै=तोड़ डालेगा । टोटनी=टोंटी । पावो=खाट का पैर । ताक=आले पर । चामीकर = सोना । लाहु=लाभ । वाहि = स्त्री को । बामी लूम = लंबी पूँछ । बनगारी = जंगल में चरने वाली ।

कृपया इस ग्रन्थको निम्नांकित तिथि पर या उसके पूर्व
लौटा दें । विलम्बसे लौटानेपर ५ पैसे
प्रतिदिन दण्ड देना हीगा ।

